सुभक्तियाँ

संयोजन

मुनि समतासागर

प्रकाशक

गुरुवर साहित्य प्रकाशन

प्रसंग : गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के धर्म प्रभावक शिष्य मुनि श्री समतासागरजी, मुनि श्री पुराणसागरजी, मुनि श्री अरहसागरजी एवं ऐलक श्री निश्चयसागरजी महाराज के महाराष्ट्र प्रान्त (खानदेश) की धर्मनगरी पारोला (जिला-जलगाँव) में आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के 42 वें आचार्य पद प्रतिष्ठापना दिवस (मार्गशीर्ष कृष्ण 2, 19 नवम्बर, 2013) के प्रभावनापूर्ण अवसर पर प्रकाशित।

❑ **कृति**	:	सुभक्तियाँ
❑ **संस्कृत भक्तियाँ**	:	आचार्य पूज्यपाद स्वामी
❑ **प्राकृत भक्तियाँ**	:	आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी
❑ **पद्यानुवाद**	:	आचार्य विद्यासागरजी महाराज
❑ **संयोजन**	:	मुनि समतासागर
❑ **संस्करण**	:	प्रथम, जनवरी, 2014
❑ **लागत मूल्य**	:	30/-
❑ **आवृत्ति**	:	1100
❑ **प्रकाशक**	:	गुरुवर साहित्य प्रकाशन
❑ **पुण्यार्जक एवं प्राप्ति स्थान**	:	पवनकुमार अनिलकुमार जैन कान्हीवाडा वाले अनिल कलेक्शन, गुड़गंज इतवारी, नागपुर 9370970878
❑ **मुद्रक**	:	विकास आफसेट, भोपाल

पुण्यार्जक की स्वीकृति से प्राप्त विक्रय राशि पुनर्प्रकाशन हेतु।

अन्य प्राप्ति स्थानों के सम्पर्क सूत्र अंतिम पृष्ठ पर दिए गए हैं।

कहाँ/क्या

अभिव्यक्ति : मुनि समतासागर	vi
आचार्य कुन्दकुन्द : एक परिचय	viii
आचार्य पूज्यपाद : एक परिचय	x
प्रथम खण्ड : संस्कृत भक्तियाँ	1–46
द्वितीय खण्ड : पद्यानुवाद	47–102
तृतीय खण्ड : प्राकृत भक्तियाँ	103–140
मुनि श्री द्वारा रचित, अनुवादित एवं सम्पादित कुछ विशिष्ट कृतियों की दिग्दर्शिका	141–142
आचार्य श्री विद्यासागरजी : एक परिचय	143–144
मुनि श्री समतासागरजी : एक परिचय	145–146
गुरुवर साहित्य प्रकाशन (स्थायी स्तंभ)	147–148

अनुक्रम

प्रथम खण्ड : संस्कृत भक्तियाँ

1.	सिद्धभक्ति	.....	1
2.	चारित्रभक्ति	.....	4
3.	योगिभक्ति	.....	7
4.	आचार्यभक्ति	.....	9
5.	पञ्चमहागुरुभक्ति	.....	11
6.	शान्तिभक्ति	.....	13
7.	निर्वाणभक्ति	.....	17
8.	नंदीश्वरभक्ति	.....	23
9.	चैत्यभक्ति	.....	31
10.	श्रुतभक्ति	.....	38
11.	समाधिभक्ति	.....	42

द्वितीय खण्ड : पद्यानुवाद

1.	सिद्धभक्ति	.....	47
2.	चारित्रभक्ति	.....	50
3.	योगिभक्ति	.....	53
4.	आचार्यभक्ति	.....	56
5.	पञ्चमहागुरुभक्ति	.....	59
6.	शान्तिभक्ति	.....	61
7.	निर्वाणभक्ति	.....	66
8.	नंदीश्वरभक्ति	.....	75
9.	चैत्यभक्ति	.....	89

तृतीय खण्ड : प्राकृत भक्तियाँ

1.	तीर्थंकरभक्ति	.....	103
2.	सिद्धभक्ति	.....	106
3.	श्रुतभक्ति	.....	111
4.	चारित्रभक्ति	.....	115
5.	योगिभक्ति	.....	118
6.	आचार्यभक्ति	.....	126
7.	निर्वाणभक्ति	.....	130
8.	पंचगुरुभक्ति	.....	137

1.

हे शान्त! संत अरहन्त अनन्त ज्ञाता, हे शुद्ध बुद्ध शिव सिद्ध अबद्ध धाता।
आचार्य वर्य उवझाय सुसाधु सिन्धु, मैं बार-बार तुम पाद पयोज बंदूँ॥

2.

है मूल मंत्र नवकार सुखी बनाता, जो भी पढ़े विनय से अघ को मिटाता।
है आद्य मंगल यही सब मंगलों में, ध्यावो इसे न भटको जग जंगलों में ॥

अभिव्यक्ति

पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति और निजात्म तत्त्व की अनुरक्ति मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। आचार्य कुन्दकुन्द विरचित प्राकृत भक्तियाँ और आचार्य पूज्यपाद विरचित संस्कृत भक्तियाँ जैन परम्परा के भक्ति-विज्ञान को तो प्रदर्शित करती ही है; सिद्धान्त और अध्यात्म के जगत् में आत्मा के शुद्ध स्वरूप-विज्ञान को भी प्रकट करती हैं। आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने निर्वाणकाण्ड में लिखा है -

जे जिणु जित्थु तत्था जे दु गया णिव्वुदिं परमं।
ते वंदामि य णिच्चं तियरणसुद्धो णमंसामि॥ 20॥

जो जिन जहाँ जहाँ से निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, मैं उनकी वंदना करता हूँ तथा त्रिकरण (मन-वचन-काय) से शुद्ध होकर नमस्कार करता हूँ।

आचार्य पूज्यपादस्वामी समाधिभक्ति में लिखते हैं -

गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धान्त-वार्धि-सद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि सन्यसन-समन्वितं मरणम्॥4 ॥

हे भगवन्! प्रत्येक जन्म में मेरा संन्यास सहित मरण मुनियों से युक्त गुरु के पादमूल में और प्रतिमा तथा जैन सिद्धान्त रूप समुद्र के जयघोष में हो।

कषायों के उपशमन और परिणामों की विशुद्धि में ये भक्तियाँ और संयोजित कृति '**सुभक्तियाँ**' निमित्त कारण बने, इसी

शुभ भावना से यह प्रशस्त संयोजना की गई है। भक्तियों के मूलपाठ और गुरुवर आचार्यश्री द्वारा रचित मनहर, सुमधुर पद्यानुवाद का पाठ पारायण बोधि, समाधि और मुक्ति प्राप्ति में कारण बने; इसी शुभ भावना से –

17/11/2013

मुनि समतासागर

कार्तिक पूर्णिमा (अष्टाह्निक पर्व)

पारोला (जलगाँव, महा.)

आचार्य कुन्दकुन्द : एक परिचय

अनन्तपुर जिले (आन्ध्रप्रदेश) के गुण्टूकल स्टेशन से लगभग चार मील दूर कोण्डकुण्ड में जन्में। जिनशासन की प्रभावना एवं आध्यात्मिक क्रान्ति की जन्मघूटी पीकर, उसे साकार करने मात्र 11 वर्ष की आयु में ही मुनिव्रत अंगीकार किए। ''शुद्धोऽसि-बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि संसार-मायापरिवर्जितोऽसि'' वाले माँ के विशिष्ट संस्कार से प्रतिबुद्ध चेतना को साथ लेकर अजर-अमर आत्मतत्त्व का उपदेश केवली-श्रुतकेवली से ग्रहण कर जग कल्याण की अदम्य उत्कृष्ट भावना और कार्य की भी शुरुआत। ''भगवान् महावीर केउपदेश को यथासूत्र लोकजीवन में चरितार्थ करने का संकल्प। ज्ञान एवं साधना के जीर्ण-लुप्त होते शाश्वत् मूल्यों का पुनःस्थापन। आचारसंहिता के श्रेष्ठ पारखी होने के नाते दीक्षा से 33 वर्ष बाद आचार्यपद की गरिमा एवं दायित्व का अनदेखा निर्वहन।''

आचार व आत्मिक बोध-साधना से विहीन मात्र देहिक आवरण परिवर्तन के खिलाफ सार्वकालिक आवाज देकर साधु-श्रावकों की संरक्षा तथा दूसरी ओर साधुत्व के गौरव को ताक पर रखकर स्वेच्छाचारी होती श्वेतवस्त्रधारी परम्परा से जबरदस्त मोर्चा लेकर मूलसंघ की स्थापना, जो अद्यावधि साधुत्व की गरिमा को साधे हुए है। अधिक क्या, जिनका नामोच्चारण मात्र ही आज के माहौल में प्रामाणिकता एवं तार्किक-वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने-कराने के लिए काफी है।

तात्कालिक जनभाषा प्राकृत में लगभग चौरासी पाहुडों का प्रणयन। जिनमें समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड, द्वादशानुप्रेक्षा आदि प्रमुख तथा उपलब्ध ग्रन्थ हैं। विश्व साहित्य में गण्य बुनियाद की ठोस धरातल पर लोकहितैषी कुरलकाव्य की रचना।

जन्म	:	वीर नि.सं. 514
मुनि दीक्षा	:	वीर नि.सं. 525
आचार्यपद	:	वीर नि.सं. 558
समाधि	:	वीर निर्वाण सं. 609
कुल आयु	:	91 वर्ष

❑❑❑

आचार्य पूज्यपाद : एक परिचय

भारतीय परम्परा में जो लब्ध प्रतिष्ठ तत्त्वदृष्टा शास्त्रकार हुए हैं उनमें आचार्य पूज्यपाद का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। उन्हें प्रतिभा और विद्वत्ता दोनों का समान रूप से वरदान प्राप्त था। जैनपरम्परा में आचार्य समन्तभद्र और सन्मतिसूत्र के कर्ता आचार्य सिद्धसेन के बाद साहित्यिक जगत् में यदि किसी को उच्चपद पर बिठलाया जा सकता है तो वे आचार्य पूज्यपाद ही हो सकते हैं। इन्होंने अपने पीछे जो साहित्य छोड़ा है उसका प्रभाव दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में समान रूप से दिखाई देता है। यही कारण है कि उत्तरकालवर्ती प्रायः अधिकतर साहित्यकारों व इतिहास मर्मज्ञों ने इनकी महत्ता, विद्वत्ता और बहुज्ञता स्वीकार करते हुए इनके चरणों में श्रद्धा के सुमन अर्पित किए हैं। ज्ञानार्णव के कर्ता आचार्य शुभचन्द्र इनके गुणों का ख्यापन करते हुए कहते हैं-

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसम्भवम्।
कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

जिनकी शास्त्र पद्धति प्राणियों के शरीर, वचन और चित्त के सभी प्रकार के मल को दूर करने में समर्थ हैं, उन देवनन्दी आचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

आचार्य गुणनन्दि ने इनके व्याकरण सूत्रों का आश्रय लेकर जैनेन्द्र प्रक्रिया की रचना की है। वे इसका मंगलाचरण करते हुए कहते हैं-

नमः श्री पूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रमम्।
यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत्क्वचित्॥

जिन्होंने लक्षण शास्त्र की रचना की, मैं उन आचार्य पूज्यपाद को प्रणाम करता हूँ। उनके इस लक्षण शास्त्र की महत्ता इसी से स्पष्ट होती है कि जो इसमें है वही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है।

अभिप्राय यह है कि आचार्य पूज्यपाद साहित्य-जगत् में कभी न अस्त होने वाले वे प्रकाशमान सूर्य थे, जिसके आलोक से दशों दिशाएँ सदा आलोकित होती रहेंगी।

शिलालेखों तथा दूसरे प्रमाणों से विदित होता है कि गुरु के द्वारा दिया हुआ इनका दीक्षा नाम देवनन्दि था, बुद्धि की प्रखरता के कारण इन्हें जिनेन्द्रबुद्धि कहते थे और देवों के द्वारा इनके चरण युगल पूजे गये थे इसलिए वे पूज्यपाद नाम से भी लोक में प्रख्यात थे।

पं. नाथूराम प्रेमी के 'देवनन्दि और उनका जैनेन्द्र व्याकरण' लेख में दिए गए परिचय के आधार से इतना कह सकते हैं कि पूज्यपाद ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम माधवभट्ट और माता का नाम श्रीदेवी था। वे कर्नाटक देश के 'कोले' नामक ग्राम के रहने वाले थे और उनका जन्म नाम पूज्यपाद था। उन्होंने विवाह न कर बचपन में ही जैनधर्म स्वीकार कर लिया था और आगे चलकर उन्होंने एक दिन बगीचे में साँप के मुँह में मेंढक तड़फता हुआ देखकर मुनि दीक्षा ले ली थी। उन्होंने अपने जीवनकाल में गगनगामी लेप के प्रभाव से कई बार विदेहक्षेत्र की यात्रा की थी। श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख के आधार से यह भी कहा जा

सकता है कि जिस जल से उनके चरण धोये जाते थे उसके स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता था। उनके चरणस्पर्श से पवित्र हुई धूलि में पत्थर को सोना बनाने की क्षमता थी। एक बार तीर्थयात्रा करते समय उनकी दृष्टि तिमिराच्छन्न हो गयी थी। जिसे उन्होंने शान्त्याष्टक का निर्माण कर दूर किया था, किन्तु इस घटना का उनके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा, जिससे उन्होंने तीर्थयात्रा से लौटकर समाधि ले ली।

आचार्य पूज्यपाद ने अपने जीवन काल में जिस साहित्य का निर्माण किया था, उनमें से कुछ ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं-

1. सर्वार्थसिद्धि, 2. समाधितन्त्र, 3. इष्टोपदेश, 4. दशभक्ति, 5. जैनेन्द्र व्याकरण, 6. जैनेन्द्र न्यास, 7.शब्दावतार, 8. शान्त्याष्टक, 9. सारसंग्रह, 10. चिकित्साशास्त्र, 11. अभिषेक पाठ।

इसके अलावा अर्हत्प्रतिष्ठालक्षण और ज्योतिष विषय पर भी इन्होंने रचना की थी, ऐसा कहा जाता है।

आचार्य पूज्यपाद कब हुए इस विषय में पाँचवी शताब्दी के मध्यकाल से लेकर प्रायः जितने साहित्यकार हैं, उन्होंने किसी न किसी रूप में या तो उनका या उनके साहित्य का उल्लेख किया है या उनके साहित्य का अनुवर्तन किया है। इस दृष्टि से आचार्य पूज्यपाद विक्रम पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर छठवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के मध्यकालवर्ती होने चाहिए। पं. नाथूराम प्रेमी आदि अनेक विद्वानों का भी लगभग यही मत है।

❑❑❑

सिद्धभक्ति

सिद्धा–नुद्धूत–कर्मप्रकृति–समुदयान्, साधितात्म–स्वभावान्।
वन्दे सिद्धिः – प्रसिद्ध्यै, तदनुपम–गुण– प्रग्रहाकृष्टि–तुष्टः॥
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुण–गुण गणोच्छादि–दोषापहाराद्,
योग्योपादान–युक्त्या दृषद् इह यथा हेम–भावोपलब्धिः॥ 1॥

नाभावः सिद्धि–रिष्टा, न निज–गुण–हतिस्तत् तपोभिर्न युक्तेः,
अस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् –तत् क्षयान् मोक्षभागी।
ज्ञाता दृष्टा स्वदेह–प्रमिति–रुपसमाहार–विस्तार–धर्मा,
ध्रौव्योत्पत्ति–व्ययात्मा, स्वगुणयुत इतो, नान्यथा साध्यसिद्धिः॥ 2॥

स त्वन्तर्बाह्य–हेतु–प्रभव–विमल–सद्दर्शन–ज्ञान–चर्या–
संपद्धेति–प्रघात–क्षत–दुरिततया, व्यञ्जिताचिन्त्य–सारैः।
कैवल्यज्ञानदृष्टि–प्रवर–सुख–महावीर्य सम्यक्त्वलब्धि –
र्ज्योति–र्वातायनादि–स्थिर–परमगुणै–,रद्भुतै–र्भासमानः॥3॥

जानन् पश्यन् समस्तं, सम–मनुपरतं, संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं, निचित–मनुपमं, प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व–प्रजाना–मपर–मभिभवन्, ज्योति–रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनाऽसौ, क्षण–मुपजनयन्–,सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः॥ 4॥

छिन्दन् शेषानशेषान्-, निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहा-,गुरु-लघुक-गुणैः, क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्य-व्यपोह-, प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्वं व्रज्या स्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये॥ 5॥

अन्याकाराप्ति-हेतु-, र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः,
प्रागात्मोपात्त-देह-, प्रति-कृति रुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-,ज्वरमरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह-
व्यापत्याद्युग्र-दुःख-,प्रभवभवहतेः,कोऽस्य सौख्यस्य माता॥ 6॥

आत्मोपादान-सिद्धं, स्वय-मतिशय-वद्-, वीत-बाधं विशालं,
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं, विषय-विरहितं, निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्।
अन्य-द्रव्यानपेक्षं, निरुपमममितं, शाश्वतं सर्व-कालम्,
उत्कृष्टानन्त-सारं, परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्॥ 7॥

नार्थः क्षुत्-तृट्-विनाशाद्, विविध-रसयुतै-, रन्न-पानै-रशुच्या,
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-, र्न हि मृदुशयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावात्।
आतङ्कार्ते-रभावे, तदुपशमन- सद्-, भेषजानर्थतावद्,
दीपा-नर्थक्य-वद् वा, व्यपगत-तिमिरे, दृश्यमाने समस्ते॥ 8॥

तादृक्-सम्पत्-समेता, विविध-नय-तपः, संयम-ज्ञान-दृष्टि - चर्या-सिद्धाः समन्तात्, प्रवितत्-यशसो, विश्व-देवाधि-देवाः। भूता भव्या भवन्तः, सकल-जगति ये, स्तूयमाना विशिष्टैस्, तान् सर्वान् नौम्यनन्तान्, निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम्॥ 9॥

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्ट-दोष-विरहितं सुपरिशुद्धं। अतिभक्तिसंप्रयुक्तो,यो वन्दते सो लघु लभते परम सुखम्॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते। सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्म-णाण-सम्मदंसण सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

चारित्रभक्ति

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्,-केयूर-हाराङ्गदान्,
भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा-प्रविसरोत्-तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान्।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनयश्, चक्रुः प्रकामं सदा,
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्,-नाचार-मभ्यर्चितम्॥ 1॥

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता,- कालोपधा-प्रश्रयाः,
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मतिश्, चेत्यष्टधा व्याहृतम्।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता, तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपता,-म्युद्धूतये कर्मणाम्॥ 2॥

शङ्का-दृष्टि-विमोह-काङ्क्षणविधि,-व्यावृत्ति-सन्नद्धतां,
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं, धर्मोपबृंह-क्रियाम्।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद्, भ्रष्टस्य संस्थापनं,
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं, मूर्ध्ना नमन्नादरात्॥ 3॥

एकान्ते शयनोपवेशन-कृतिः, संतापनं तानवम्,
संख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशनं, विष्वाण-मर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः, स्वादो रसस्यानिशं,
षोढ़ा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति,- प्राप्त्यभ्युपायं तपः॥ 4॥

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम्,
ध्यानं व्यापृति-रामयाविनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ।
कायोत्सर्जन सत्क्रिया, विनय-इत्येवं तपः षड्विधं,
वन्देऽभ्यन्तर-मन्तरङ्ग बलवद्,-विद्वेषि विध्वंसनम्॥ 5॥

सम्यग्ज्ञान विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्मते,
वीर्यस्या-विनि-गूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लध्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वन्दे सता-मर्चितम्॥ 6॥

तिस्रः सत्तम-गुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः, पञ्चव्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्, वीरं नमामो वयम् ॥ 7॥

आचारं सह-पञ्चभेद-मुदितं, तीर्थं परं मङ्गलं,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो, वन्दे समग्रान्यतीन्।
आत्माधीन सुखोदया मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनीं,
इच्छन्केवल-दर्शना-वगमन, प्राज्य-प्रकाशोज्ज्वलाम्॥ 8॥

अज्ञानाद्य-दवीवृतं नियमिनोऽ, वर्तिष्यहं चान्यथा,
तस्मिन् नर्जित-मस्यति प्रतिनवं, चैनो निराकुर्वति।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा-मृद्धिं नयत्यद्भुतं,
तन्मिथ्या गुरुदुष्कृतं भवतु मे, स्वं निन्दतो निन्दितम्॥ 9॥

संसार-व्यसना-हति-प्रचलिता, नित्योदय-प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः, शान्तैनसः प्राणिनः।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपान-मुच्चैस्तरा,
मारोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं, जैनेन्द्र-मोजस्विनः॥ 10॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचेउं सम्म-णाणजोयस्स सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पञ्च-महव्वय-संपण्णस्स, तिगुत्ति-गुत्तस्स, पञ्चसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

योगिभक्ति

जातिजरो-रुरोग-मरणातुर, शोकसहस्र - दीपिताः,
दुःसह-नरक-पतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्ध-चेतसः।
जीवितमम्बु-बिन्दुचपलं, तडिदभ्र-समा विभूतयः,
सकलमिदं विचिन्त्यमुनयः,प्रशमाय-वनान्त-माश्रिताः ॥1 ॥

व्रतसमिति-गुप्तिसंयुताः, शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः।
ध्यानाध्ययनवशङ्गताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ॥ 2 ॥

दिनकर किरण-निकर-संतप्त, शिला-निचयेषु निस्पृहाः,
मलपटला-वलिप्ततनवः शिथिलीकृत-कर्मबंधनाः।
व्यपगत-मदन-दर्प-रतिदोष, कषाय-विरक्त-मत्सराः,
गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभि, मुखस्थितयो दिगम्बराः ॥ 3 ॥

सज्ज्ञानामृतपायिभिः, क्षान्तिपयः सिञ्च्यमानपुण्यकायैः।
धृतसन्तोषच्छत्रकैः, तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥ 4 ॥

शिखिगल कज्जलालिमलिनै, र्विबुधाधिपचाप चित्रितैः,
भीम-रवैर्विसृष्ट-चण्डाशनि, शीतल-वायु-वृष्टिभिः।
गगनतलं विलोक्य जलदैः, स्थगितं सहसा तपोधनाः,
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु, निशासु विशङ्कमासते ॥ 5 ॥

जलधारा-शरताडिता, न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःखभीरवः, परीषहाराति-घातिनः प्रवीरा॥ 6॥

अविरतबहल-तुहिनकण, वारिभिरंघ्रिप-पत्रपातनै-
रनवरतमुक्त-सात्काररवैः परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः।
इह श्रमणा धृति-कम्बला-वृताः शिशिर-निशां,
तुषार-विषमां गमयन्ति, चतुःपथे स्थिताः॥ 7॥

इति योगत्रयधारिणः, सकलतपशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः।
परमानन्दसुखैषिणः, समाधिमग्र्यं दिशन्तु नो भदन्ताः॥ 8॥

गिम्हे गिरि-सिहरत्था, वरिसायाले-रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्चं॥ 9॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते। योगिभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदी-वदोसमुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोण-वीरास-णेक्कपास कुक्कुडासण-चउछपक्ख-खवणादि जोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

आचार्यभक्ति

सिद्ध-गुण-स्तुति निरता, नुद्धूतरुषाग्नि-जालबहुलविशेषान्।
गुप्ति-भिरभि-संपूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान्॥ 1॥

मुनि-माहात्म्य विशेषान्, जिनशासन-सत्प्रदीप-भासुरमूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्-सुमनसो, बद्धरजोविपुल-मूलघातन-कुशलान्॥ 2॥

गुणमणि-विरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चतस्य धातॄन्सततम्।
रहित-प्रमादचर्यान्, दर्शन-शुद्धान् गणस्य संतुष्टि करान्॥ 3॥

मोहच्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-परिशुद्धहृदयशोभन व्यवहारान्।
प्रासुक-निलयाननघानाशा विध्वंसि-चेतसो हतकुपथान्॥ 4॥

धारित-विलसन्मुण्डान्वर्जित-बहुदण्ड-पिण्डमण्डल निकरान्।
सकलपरीषहजयिनः, क्रियाभिरनिशं प्रमादतःपरिरहितान्॥ 5॥

अचलान् व्यपेतनिद्रान्, स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्या - हीनान्।
विधिनानाश्रितवासा, नलिप्तदेहान् विनिर्जितेन्द्रियकरिणः॥ 6॥

अतुला-नुत्कुटिका-सान्विविक्त चित्तान-खण्डित-स्वाध्यायान्।
दक्षिण-भावसमग्रान्, व्यपगत-मदरागलोभ-शठमात्सर्यान्॥ 7॥

भिन्नार्तरौद्र-पक्षान्, संभावित-धर्मशुक्ल-निर्मल हृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन्,पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्यान्॥ 8॥

तरुमूल-योगयुक्ता, नवकाशाताप योगराग-सनाथान्।
बहुजन-हितकर-चर्यानभया-ननघान्महानुभाव-विधानान्॥ 9॥

ईदृशगुण-सम्पन्नान्, युष्मान्भक्त्या-विशालया - स्थिरयोगान्।
विधिनानारत-मग्र्यान्,मुकुलीकृतहस्त-कमलशोभितशिरसा॥ 10॥

अभिनौमि-सकलकलुष प्रभवोदय-जन्मजरामरण-बंधन मुक्तान्।
शिवमचल-मनघमक्षय, मव्याहतमुक्ति-सौख्यमस्त्विति सततम्॥ 11॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण - सम्मचारित्तजुत्ताणं पञ्चविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालणरयाणं सव्व-साहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

पञ्चमहागुरुभक्ति

श्रीमदमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित-मणि-किरणवारि-धाराभिः।
प्रक्षालित-पद-युगलान्, प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या॥ 1॥

अष्टगुणैः समुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्टकर्म-रिपुसमितीन्।
सिद्धान् सतत-मनन्तान्, नमस्करोमीष्ट-तुष्टि संसिद्धयै॥ 2॥

साचार-श्रुत-जलधीन्-, प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग-, कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्॥ 3॥

मिथ्यावादि-मद्रोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचन-संदर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये, मम दुरितारि-प्रणाशाय॥ 4॥

सम्यग्दर्शन - दीप - प्रकाशकामेय-बोध-सम्भूताः।
भूरि-चरित्र-पताकास्, ते साधु-गणास्तु मां पान्तु॥ 5॥

जिनसिद्ध-सूरिदेशक-, साधु-वरानमल गुण गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कारपदैस् त्रिसन्ध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय॥ 6॥

एष पञ्चनमस्कारः, सर्व-पापप्रणाशनः।
मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं भवेत् ॥ 7॥

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायाः सर्वसाधवः।
कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे, निर्वाण-परमश्रियम् ॥ 8॥

सर्वान्-जिनेन्द्र-चन्द्रान्, सिद्धानाचार्य पाठकान्-साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे रत्नत्रय-सिद्धये भक्त्या ॥ 9॥

पान्तु श्रीपाद-पद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम्।
लालितानि सुराधीश, चूडामणि मरीचिभिः॥ 10॥

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगाङ्गै-रष्टभिः स्तुवे॥ 11॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-माउया-संजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण पालणरदाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण-गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

शान्तिभक्ति

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजाः,
हेतुस्तत्र विचित्र-दुःखनिचयः, संसार - घोरार्णवः।
अत्यन्त-स्फुरदुग्र - रश्मिनिकर,-व्याकीर्ण-भूमण्डलो,
ग्रैष्मः कारयतीन्दु-पादसलिलच्-,छायानुरागं रविः॥ 1॥

क्रुद्धाशीर्विष-दष्ट-दुर्जय-विष,-ज्वालावली विक्रमो,
विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनै-, र्याति प्रशान्तिं यथा।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज-युगस्, - तोत्रोन्मुखानां नृणां,
विघ्नाः काय विनायकाश्च सहसा, शाम्यन्त्यहो विस्मयः॥ 2॥

सन्तप्तोत्तम - काञ्चन - क्षितिधर, श्रीस्पर्द्धि-गौरद्युते,
पुंसां त्वच्चरणप्रणाम करणात् पीडाः प्रयान्तिक्षयम्।
उद्यद्भास्कर-विस्फुरत्कर-शत-, व्याघात-निष्कासिता,
नानादेहि विलोचन-द्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी॥ 3॥

त्रैलोक्येश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजया, दत्यन्त रौद्रात्मकान्,
नाना जन्म-शतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्र-दावानलान्,
न स्याच्चेत्तव पाद-पद्म-युगल-स्तुत्यापगा-वारणम्॥ 4॥

लोकालोक-निरन्तर-प्रवितत्-, ज्ञानैक-मूर्त्ते विभो!
नाना - रत्न - पिनद्ध - दण्ड-रुचिर-श्वेतात-पत्रत्रय।
त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीत-रवतः, शीघ्रं द्रवन्त्यामया,
दर्पाध्मात-मृगेन्द्रभीम निनदाद्, वन्या यथा कुञ्जराः॥ 5॥

दिव्य-स्त्री नयनाभिराम-विपुल, श्रीमेरु-चूडामणे,
भास्वद् बाल दिवाकर-द्युति-हर-, प्राणीष्ट-भाण्डल।
अव्याबाध-मचिन्त्य-सार-मतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल-, स्तुत्यैव सम्प्राप्यते॥ 6॥

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयंस्,
तावद् धारयतीह पङ्कज-वनं, निद्रातिभार-श्रमम्।
यावत्त्वच्चरण-द्वयस्य भगवन्!, न स्यात् प्रसादोदयस् -
तावज्जीव-निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्॥ 7॥

शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र-शान्तमनसस् त्वत्पाद-पद्माश्रयात्,
संप्राप्ताः पृथिवी-तलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः।
कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु,
त्वत्पादद्वय-दैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः॥ 8॥

शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं, शीलगुण-व्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चित-लक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुज नेत्रम्॥ 9॥

पञ्चममीप्सित-चक्रधराणां, पूजितमिन्द्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि॥ 10॥

दिव्यतरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टि, - र्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतपवारण-चामरयुग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः॥ 11॥

तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं, मह्यमरं पठते परमां च॥ 12॥

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः,
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपास्,
तीर्थङ्कराः सतत शान्तिकरा भवन्तु॥13॥

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥14॥

क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान्, धार्मिको - भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्, वितरतु मघवा, व्याध्यो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चोरिमारिः, क्षणमपि जगतां, मास्मभूज्जीव-लोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं, प्रभवतु सततं, सर्व-सौख्य-प्रदायि॥ 15॥

प्रध्वस्त - घाति - कर्माणः, केवल-ज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः॥ 16॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पञ्च-महा-कल्लाण-संपण्णाणं अट्ठ-महापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव-वासुदेव चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महापुरिसाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

निर्वाणभक्ति

विबुधपति–खगपति–नरपति – धनदोरग – भूतयक्षपतिमहितम्।
अतुलसुख–विमलनिरुपम–शिवमचलमनामयं हि संप्राप्तम्॥ 1॥

कल्याणैः – संस्तोष्ये पञ्चभिरनघं त्रिलोक परमगुरुम्।
भव्यजनतुष्टि–जननैर्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या॥ 2॥

आषाढसुसितषष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः॥ 3॥

सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् संप्रदर्श्य विभुः॥ 4॥

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि–शशाङ्कयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने॥ 5॥

हस्ताश्रिते शशाङ्के चैत्र ज्योत्स्ने चतुर्दशी दिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम्॥ 6॥

भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनन्त गुणराशिः।
अमरोपनीतभोगान् सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः॥ 7॥

नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।
चन्द्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनिःक्रान्तः॥ 8॥

मार्गशिरकृष्णदशमी-हस्तोत्तर मध्यमाश्रिते सोमे।
षष्ठेन त्वपराह्णे भक्तेन जिनः प्रवव्राज॥ 9॥

ग्रामपुरखेट कर्वट-मटंब घोषाकरान्प्रविजहार।
उग्रैस्तपो-विधानैर्-द्वादश-वर्षाण्यमर पूज्यः॥ 10॥

ऋजु-कूलायास्तीरे शालद्रुम संश्रिते शिलापट्टे।
अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे॥ 11॥

वैशाखसित-दशम्यां हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चन्द्रे।
क्षपक-श्रेण्यारूढ-स्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥12॥

अथ भगवान् संप्रापद्-दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम् ।
चातुर्वर्ण्य सुसङ्घस्तत्राभूद् गौतम-प्रभृतिः॥ 13॥

छत्राशोकौ घोषं सिंहासन दुंदुभी कुसुमवृष्टिम्।
वरचामर भामण्डल-दिव्यान्यन्यानि चावापत्॥ 14॥

दशविधमनगाराणा-मेकादशधोत्तरं तथा धर्मम्।
देशयमानो व्यवहरंस्-त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः॥ 15॥

पद्मवनदीर्घिकाकुल-विविध द्रुमखण्ड मण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः॥ 16॥

कार्तिककृष्ण-स्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्यकर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्व्यजरामरमक्षयं सौख्यम्॥ 17॥

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधाह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचन्दन - कालागुरु - सुरभिगोशीर्षैः॥ 18॥

अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभि-धूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गतादिवं खं च वनभवने॥ 19॥

इत्येवं भगवति वर्धमान चन्द्रे, यः स्तोत्रं पठति सुसन्ध्ययो-र्द्वयोर्हि।
सोऽनन्तं परम-सुखं नृदेव-लोके, भुक्त्वान्ते शिव-पदमक्षयं प्रयाति॥20॥

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुत-पारगाणां,
निर्वाण-भूमि-रिह भारतवर्ष-जानाम्।
तामद्य शुद्ध-मनसा क्रियया वचोभिः
संस्तोतु-मुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या॥ 21॥

कैलाशशैल-शिखरे परि-निर्वृतोऽसौ,
शैले-शिभाव-मुपपद्य वृषो महात्मा।
चम्पापुरे च वसुपूज्य-सुतः सुधीमान्,
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः॥ 22॥

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः,
पाखण्डिभिश्च परमार्थ-गवेष-शीलैः।
नष्टाष्ट कर्म समये तदरिष्टनेमिः,
संप्राप्तवान् क्षितिधरे वृहदूर्जयन्ते॥ 23॥

पावापुरस्य बहिरुन्नत भूमि-देशे,
पद्मोत्पला-कुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमान जिनदेव इति प्रतीतो,
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा॥ 24॥

शेषास्तु ते जिनवरा जित-मोह-मल्ला,
ज्ञानार्क भूरि किरणै-रवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरव-धारित सौख्यनिष्ठं,
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः॥ 25॥

आद्यश्चतु - र्दश-दिनै-र्विनिवृत्तयोगः,
षष्ठेन निष्ठित-कृतिर्जिन वर्द्धमानः।
शेषाविधूत घनकर्म निबद्धपाशाः,
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः॥ 26॥

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा-
न्यादाय मानस-करै-रभितः किरन्तः।
पर्येम आदृति-युता भगवन् निषद्याः,
संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः॥ 27॥

शत्रुञ्जये नगवरे दमितारि-पक्षाः,
पण्डोः सुताः परम-निर्वृति-मभ्युपेताः।
तुंग्यां तु सङ्गरहितो बलभद्रनामा,

नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः॥ 28॥

द्रोणीमति प्रबल-कुण्डल मेंद्रके च,
वैभार-पर्वत-तले वर-सिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि-बलाहके च,
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृष-दीपके च॥ 29॥

सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे,
दण्डात्मके गजपथे पृथु-सार-यष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः,
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन्॥ 30॥

इक्षोर्विकार रसपृक्त गुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकां मधुरता-मुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषै रुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि॥ 31॥

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां,
प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति-भूमिदेशाः।
ते मे जिना जितभया मुनयश्च शान्ताः,
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम्॥ 32॥

गौर्गजोश्च कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गण्डो महिष-सूकरौ॥ 33॥

सेधा–वज्र–मृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शङ्खो नाग–राजश्च केसरी ॥ 34 ॥

शान्ति–कुन्थवर–कौरव्या यादवौ नेमि–सुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः ॥ 35 ॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्मि अवसप्पिणीए, चउत्थ समयस्स, पच्छिमे भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए, कत्तिय मासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए, सादीए णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुवि लोएसु, भवणवासिय–वाणविंतर–जोयिसिय–कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण महाकल्लाण पुज्जं करंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुण–संपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

नंदीश्वरभक्ति

त्रिदशपतिमुकुट तट गतमणि, गणकर निकर सलिलधाराधौत।
क्रमकमलयुगलजिनपति रुचिर, प्रतिबिम्बविलय विरहितनिलयान्॥1॥

निलयानहमिह महसां सहसा, प्रणिपतन पूर्वमवनौम्यवनौ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या निसर्ग, शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम्॥ 2॥

भावनसुर-भवनेषु, द्वासप्तति-शत-सहस्र-संख्याभ्यधिकाः।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता, भवनानां भूरि-तेजसां भुवनानाम्॥ 3॥

त्रिभुवन-भूत-विभूनां, संख्यातीतान्यसंख्य-गुण-युक्तानि।
त्रिभुवन-जन-नयन-मनः, प्रियाणिभवनानि भौम-विबुध-नुतानि॥4॥

यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योति-र्लोकाधिदेवताभिनुतानि।
कल्पेऽनेक-विकल्पे, कल्पातीतेऽहमिन्द्र-कल्पानल्पे॥ 5॥

विंशतिरथ त्रिसहिता, सहस्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता।
चतुरधिकाशीतिरतः, पञ्चक-शून्येन विनिहतान्यनघानि॥ 6॥

अष्टापञ्चाशदतश्-चतुःशतानीह मानुषे च क्षेत्रे।
लोकालोक-विभाग-प्रलोकनाऽऽलोक-संयुजां जय-भाजाम्॥7॥

नव-नव-चतुःशतानि च, सप्त च नवतिः सहस्र-गुणिताः षट् च।
पञ्चाशत्पञ्च-वियत्, प्रहताः पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ताः॥8॥

एतावन्त्येव सता-मकृत्रि-माण्यथ जिनेशिनां भवनानि।
भुवन-त्रितये त्रिभुवन-सुर-समिति-समर्च्यमान-सप्रतिमानि॥ 9॥

वक्षार - रुचक - कुण्डल - रौप्य - नगोत्तर - कुलेषु कारनगेषु।
कुरुषु च जिनभवनानि,त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या॥ 10॥

नन्दीश्वर-सद्द्वीपे, नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते धृत-शोभे।
चन्द्रकर-निकर-सन्निभ-रुन्द्र-यशो वितत-दिङ्-मही-मण्डलके॥11॥

तत्रत्याञ्जन-दधिमुख-रतिकर-पुरुनग-वराख्य-पर्वतमुख्याः।
प्रतिदिश-मेषा-मुपरि,त्रयो-दशेन्द्रार्चितानि, जिनभवनानि॥ 12॥

आषाढ़-कार्तिकाख्ये,फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः।
आरभ्याष्ट-दिनेषु च, सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयो भक्त्या॥ 13॥

तेषु महामह-मुचितं प्रचुराक्षत-गन्ध-पुष्प-धूपै-र्दिव्यैः।
सर्वज्ञ-प्रतिमाना- मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्व-हितम्॥ 14॥

भेदेन वर्णना का, सौधर्मः स्नपन-कर्तृता मापन्नः।
परिचारक-भावमिताः, शेषेन्द्रा-रुन्द्रचन्द्र-निर्मलयशसः॥ 15॥

मङ्गल-पात्राणि पुनस्तद्-देव्यो बिभ्रतिस्म शुभ्र-गुणाढ्याः।
अप्सरसो नर्तक्यः, शेष-सुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः॥ 16॥

वाचस्पति-वाचामपि, गोचरतां संव्यतीत्य यत्-क्रममाणम्।
विबुधपति-विहित-विभवं, मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्॥17॥

निष्ठापित-जिनपूजाश्-चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः।
सुरपतयो नन्दीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः॥ 18॥

पञ्चसु मंदरगिरिषु, श्रीभद्रशालनन्दन-सौमनसम्।
पाण्डुकवनमिति तेषु, प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव॥ 19॥

तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य॥ 20॥

सहतोरणसद्वेदी - परीतवनयाग - वृक्ष - मानस्तम्भः।
ध्वजपंक्तिदशकगोपुर, चतुष्टयत्रितय-शाल-मण्डप-वर्यैः॥ 21॥

अभिषेकप्रेक्षणिका, क्रीडनसंगीतनाटका-लोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पन-संकल्पातीत-कल्पनैः समुपेतैः॥ 22॥

वापी सत्पुष्करिणी, सुदीर्घिकाद्यम्बुसंसृतैः समुपेतैः।
विकसितजल-रुहकुसुमै-र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि॥ 23॥

भृंगाराब्दक-कलशा, द्युपकरणैरष्टशतक-परिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः, कृतझणझणनिनद-वितत-घण्टाजालैः॥ 24॥

प्रविभाजंते नित्यं, हिरण्मयानीवरेशिनां भवनानि।
गंधकुटीगतमृगपति, विष्टर-रुचिराणि-विविध-विभव-युतानि॥25॥

येषु-जिनानां प्रतिमाः, पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनक-रजतविकृता,दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहाः॥26॥

तानि सदा वंदेऽहं, भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिश-मतिशय-शोभा-विभाञ्जि पापविभाञ्जि ॥ 27 ॥

सप्तत्यधिक-शतप्रिय, धर्मक्षेत्रगत-तीर्थकर-वर-वृषभान्।
भूतभविष्यत् संप्रति-काल-भवान् भवविहानये विनतोऽस्मि ॥ 28 ॥

अस्यामवसर्पिण्यां, वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।
अष्टापदगिरिमस्तक, गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः ॥ 29 ॥

श्रीवासुपूज्यभगवान्, शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानाम्।
चम्पायां दुरित-हरः, परमपदं प्रापदापदा-मन्तगतः ॥ 30 ॥

मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जातः।
वृहदूर्जयन्त-शिखरे, शिखामणिस्त्रिभुवनस्य-नेमिर्भगवान् ॥ 31 ॥

पावापुरवरसरसां, मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसाम्।
वीरो नीरदनादो, भूरि-गुणश्चारु शोभमास्पद-मगमत् ॥ 32 ॥

सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थकराः, कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ॥ 33 ॥

शेषाणां केवलिना- मशेषमतवेदिगणभृतां साधूनां।
गिरितलविवरदरीसरि-दुरुवनतरु-विटपिजलधि-दहनशिखासु ॥ 34 ॥

मोक्षगतिहेतु-भूत-स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मंगलभूतान्येता-न्यंगीकृत-धर्मकर्मणामस्माकम् ॥35 ॥

जिनपतयस्तत्-प्रतिमा-स्तदालयास्तन्निषद्यका स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघात-हेतवो भव्यानाम्॥ 36॥

सन्ध्यासु तिसृषु नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्र-मेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं, लघु लभते श्रुतधरेडितं पद-ममितम्॥ 37॥

नित्यं निःस्वेदत्वं, निर्मलता क्षीर-गौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृति-संहनने, सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम्॥ 38॥

अप्रतिम-वीर्यता च, प्रिय-हित वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।
प्रथिता दश-विख्याता, स्वतिशय-धर्मा स्वयं-भुवो देहस्य॥ 39॥

गव्यूति-शत-चतुष्टय- सुभिक्षता-गगनगमन-मप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभाव-श्चतुरास्यत्वं च सर्व-विद्येश्वरता॥ 40॥

अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख-केशत्वम्।
स्वतिशय-गुणा भगवतो,घाति-क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव॥ 41॥

सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्व-जनता-विषया।
सर्वर्तु-फल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरु-परिणामाः॥ 42॥

आदर्शतल-प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः, परमानन्दश्च भवति सर्व-जनस्य॥ 43॥

मरुतोऽपि सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम्।
व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति॥ 44॥

तदनु स्तनितकुमारा, विद्युन्माला-विलास-हास-विभूषाः।
प्रकिरन्ति सुरभि-गन्धिं, गन्धोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः॥ 45॥

वर-पद्मराग-केसर-मतुल-सुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयम्।
पादन्यासे पद्मं सप्त, पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवन्ति॥ 46॥

फलभार-नम्र-शालि- ब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा।
परिहृषितेव च भूमि- स्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती॥ 47॥

शरदुदय-विमल-सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलम्।
जहति च दिशस्तिमिरिकां, विगतरजः प्रभृति जिह्मताभावं सद्यः॥ 48॥

एतेतेति त्वरितं ज्योति- र्व्यन्तर-दिवौकसा-ममृतभुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम्॥ 49॥

स्फुर-दरसहस्र-रुचिरं, विमल-महारत्न-किरण-निकर-परीतम्।
प्रहसित-किरण-सहस्र-द्युति-मण्डल-मग्रगामि-धर्म-सुचक्रम्॥ 50॥

इत्यष्ट-मंगलं च, स्वादर्श-प्रभृति-भक्तिराग-परीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशै-रेतेऽपि-निरुपमातिशयाः॥ 51॥

वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदु-पल्लवोपशोभित-शाखः।
श्रीमानशोक-वृक्षो वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः॥ 52॥

मन्दार-कुन्द-कुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः।
समद-भ्रमर-परीतै-र्व्यामिश्रा पतति कुसुम-वृष्टि-र्नभसः॥ 53॥

कटक-कटि-सूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल-दलाक्षौ, परि-निक्षिपतः सलील-चामर-युगलम्॥ 54॥

आकस्मिक-मिव युगपद्-दिवसकर-सहस्र-मपगत-व्यवधानम्।
भामण्डल-मविभावित-रात्रिञ्दिव-भेद-मतितरामाभाति॥ 55॥

प्रबल-पवनाभिघात- प्रक्षुभित-समुद्र-घोष-मन्द्र-ध्वानम्।
दन्ध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिस्तालसमम्॥ 56॥

त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छन-मिन्दुत्रय-तुल्य-मतुल-मुक्ता-जालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त-दण्ड-मधिक-मनोज्ञम्॥ 57॥

ध्वनिरपि योजनमेकं, प्रजायते श्रोतृ-हृदयहारि-गम्भीरः।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनितमिव प्रविततान्त-राशावलयम्॥ 58॥

स्फुरितांशु-रत्न-दीधिति- परिविच्छुरिताऽमरेन्द्र-चापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः-स्फटिक-शिला-घटित-सिंह-विष्टर-मतुलम्॥ 59॥

यस्येह चतुस्त्रिंशत्- प्रवर-गुणा प्रातिहार्य-लक्ष्यम्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुण-महते॥ 60॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। णंदीसरदीवम्मि, चउदिस विदिसासु अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा

सपरिवारा दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं, आसाढ़-कत्तियफागुण-मासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। णंदीसर-महाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इह संतो तत्थसंताइयं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

❑❑❑

चैत्यभक्ति

श्री गौतमादिपद-मद्भुतपुण्यबन्ध-
मुद्योतिताखिल, ममौघमघप्रणाशम्।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं,
निर्वाणकारणमशेष-जगद्धितार्थम् ॥ 1 ॥

जयति भगवान् हेमाम्भोज-प्रचार-विजृम्भिता-
वमर-मुकुटच्छायोद्गीर्ण- प्रभा - परिचुम्बितौ।
कलुष-हृदया मनोद्भ्रांताः परस्पर-वैरिणः,
विगत-कलुषाः पादौ-यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥ 2 ॥

तदनु जयति श्रेयान्-धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः,
कुगति-विपथ-क्लेशा द्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणत-नयस्याङ्गी-भावाद-विविक्त-विकल्पितम्,
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र-वचोऽमृतम् ॥ 3 ॥

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभङ्ग-तरङ्गिणी,
प्रभव-विगम ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी।
निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम्,
विगत-रजसं मोक्षं देयान् निरत्यय-मव्ययम् ॥ 4 ॥

अर्हत्सिद्धाचार्यो-, पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्व-जगद्-वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः॥ 5॥

मोहादि-सर्व-दोषारि- घातकेभ्यः सदा हत-रजोभ्यः।
विरहित-रहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः॥ 6॥

क्षान्त्यार्जवादि-गुण-गण, सुसाधनं सकल-लोक-हित-हेतुम्।
शुभ-धामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्॥ 7॥

मिथ्याज्ञानतमोवृत-, लोकैकज्योतिरमित-गमयोगि।
साङ्गोपाङ्ग-मजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे॥ 8॥

भवन-विमान-ज्योति-, र्व्यन्तर-नरलोक विश्व-चैत्यानि।
त्रिजग-दभिवन्दितानां, त्रेधा वन्दे जिनेन्द्राणाम्॥ 9॥

भुवन-त्रयेऽपि भुवन-, त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थ-कर्त्रृणाम्।
वन्दे भवाग्नि-शान्त्यै, विभवाना-मालया-लीस्ताः॥ 10॥

इति पञ्च-महापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम्॥ 11॥

अकृतानि कृतानि-चाप्रमेय-,द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामर-पूजितानि, वन्दे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्॥ 12॥

द्युति-मण्डल-भासुराङ्ग-यष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः॥ 13॥

विगतायुधविक्रिया-विभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्याऽप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे॥ 14॥

कथयन्ति कषाय-मुक्ति-,लक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्॥ 15॥

यदिदं मम सिद्धभक्ति-नीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भव-ताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे॥ 16॥

अर्हतां सर्व - भावानां, दर्शन -ज्ञान-सम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये॥ 17॥

श्रीमद् - भवन - वासस्था स्वयं भासुर-मूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम्॥ 18॥

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये॥ 19॥

ये व्यन्तर - विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्या-मतिक्रान्ताः सन्तु नो दोष-विच्छिदे॥ 20॥

ज्योतिषा-मथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्॥ 21॥

वन्दे सुर-किरीटाग्र- मणिच्छाया-भिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि-लब्धये॥ 22॥

इति स्तुति पथातीत-श्रीभृता-मर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव-निरोधिनी॥ 23॥

अर्हन् - महा -नदस्य-त्रिभुवन-भव्यजन-तीर्थ-यात्रिक-दुरित-प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिक-कुहक-तीर्थ-मुत्तम तीर्थम्॥ 24॥

लोकालोक - सुतत्त्व - प्रत्यव-बोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-प्रत्यह-वहत्प्रवाहं व्रत-शीलामल-विशाल-कूल-द्वितयम्॥ 25॥

शुक्लध्यान - स्तिमित - स्थित-राजद्राज - हंसराजित-मसकृत्।
स्वाध्याय-मन्द्रघोषं,नानागुण-समितिगुप्ति-सिकतासुभगम्॥ 26॥

क्षान्त्यावर्त-सहस्रं, सर्वदया-विकच-कुसुम-विलसल्लतिकम्।
दुःसह परीषहाख्य - द्रुततर - रङ्गत्तरङ्ग- भङ्गुर-निकरम् ॥ 27॥

व्यपगत-कषाय-फेनं, राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम्॥ 28॥

ऋषि-वृषभस्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं सास्रव-संवरणनिर्जरा-निःस्रवणम्॥ 29॥

गणधर – चक्र – धरेन्द्र – प्रभृति – महा – भव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थ–ममेयम्॥ 30॥

अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तर–समस्त–दुरितं दूरम्।
व्यपहरतु परम–पावन–मनन्य जय्य स्वभाव–भावगंभीरम्॥ 31॥

अताम्र–नयनोत्पलं सकल–कोप–वह्ने–र्जयात्,
कटाक्ष – शर – मोक्ष – हीन – मविकारतोद्रेकतः।
विषाद–मद–हानितः प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते हृदय–शुद्धि–मात्यन्तिकीम्॥ 32॥

निराभरण–भासुरं विगत–राग–वेगोदयात्,
निरम्बर–मनोहरं प्रकृति–रूप–निर्दोषतः।
निरायुध–सुनिर्भयं विगत–हिंस्य–हिंसा–क्रमात्,
निरामिष–सुतृप्ति–मद्–विविधवेदनानां क्षयात्॥ 33॥

मितस्थिति–नखाङ्गजं गत–रजोमल–स्पर्शनम्।
नवाम्बुरुह – चन्दन – प्रतिम – दिव्य – गन्धोदयम्।
रवीन्दु – कुलिशादि – दिव्य – बहुलक्षणालंकृतम्।
दिवाकर–सहस्र–भासुर–मपीक्षणानां प्रियम्॥ 34॥

हितार्थ–परिपन्थिभिः प्रबल–राग–मोहादिभिः,
कलङ्कितमना जनो यदभिवीक्ष्यशो शुद्ध्यते।

सदाभिमुख-मेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः।
शरद्-विमल-चन्द्रमण्डलमिवोत्थितं दृश्यते॥ 35॥

तदेत - दमरेश्वर - प्रचल - मौलि - माला-मणि,
स्फुरत् - किरण - चुम्बनीय - चरणारविन्द-द्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूप - मन्धीकृतम्।
जगत्-सकल-मन्यतीर्थ-गुरु-रूप-दोषोदयैः॥ 36॥

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल, सत्खातिका पुष्पवाटी,
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्त र्ध्वजाद्याः।
शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं स्तूपहर्म्यावली च,
प्राकारः स्फाटिकोन्त-नृसुरमुनिसभा,पीठिकाग्रे स्वयंभूः॥37॥

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्तिचैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम्॥ 38॥

अवनि-तल-गतानां, कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां, दिव्य-वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृतानां, देव राजा-र्चितानां,
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि॥ 39॥

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-, क्षेत्र त्रये ये भवांश्-
चन्द्राम्भोज शिखण्डिकण्ठकनक-प्रावृड्घनाभाजिनाः।

सम्यग्ज्ञान–चरित्र–लक्षणधरा दग्धाष्ट–कर्मेन्धना,
भूतानागत–वर्तमान–समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ 40 ॥
श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर–रुचके, कुण्डले मानुषाङ्के।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ, दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥ 41 ॥
देवा सुरेन्द्र–नर–नाग–समर्चितेभ्यः,
पाप – प्रणाशकर – भव्य–मनोहरेभ्यः।
घण्टा–ध्वजादि परिवार विभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः॥ 42 ॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चेइय–भत्ति–काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय–तिरियलोय–उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय–वाणविंतर–जोइसिय–कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण– संपत्ति होउ मज्झं।

श्रुतभक्ति

स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि।
लोकालोकविलोकन लोलितसल्लोक -लोचनानि सदा ॥1 ॥

अभिमुखनियमितबोधन-माभिनिबोधिक-मनिन्द्रियेन्द्रियजम्।
बह्वाद्यवग्रहादिककृत - षट्त्रिंशत् - त्रिशत-भेदम् ॥2 ॥

विविधर्द्धिबुद्धि-कोष्ठस्फुट-बीजपदानुसारि-बुद्ध्यधिकं।
संभिन्न-श्रोतृ-तया, सार्धं श्रुत-भाजनं वन्दे॥ 3 ॥

श्रुतमपि जिनवर-विहितं गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अङ्गाङ्ग-बाह्य-भावित-मनन्त-विषयं नमस्यामि॥ 4 ॥

पर्यायाक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्तिकानुयोग -विधीन्।
प्राभृतक-प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु-पूर्वं च॥ 5 ॥

तेषां समासतोऽपि च विंशतिभेदान् समश्नुवानं तत्।
वन्दे द्वादशधोक्तं गम्भीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या॥ 6 ॥

आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवाय-नामधेयं च।
व्याख्या-प्रज्ञप्तिं च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने॥ 7 ॥

वन्देऽन्तकृद्दश-मनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि॥ 8 ॥

परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते।
सार्द्धं चूलिकयापि च पञ्चविधं दृष्टिवादं च॥ 9॥

पूर्वगतं तु चतुर्दशधोदित-मुत्पादपूर्व-माद्यमहम्।
आग्रायणीय-मीडे पुरु-वीर्यानुप्रवादं च॥ 10॥

संततमहमभिवन्दे तथास्ति-नास्ति प्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवाद-सत्यप्रवाद-मात्मप्रवादं च॥ 11॥

कर्मप्रवाद-मीडेऽथ प्रत्याख्यान-नामधेयं च।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च॥ 12॥

कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं च।
अथ लोकबिन्दुसारं वन्दे लोकाग्रसारपदम्॥ 13॥

दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पञ्चदश च तथा॥14॥

वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि॥15॥

पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुव-मध्रुव-च्यवन-लब्धि-नामानि।
अध्रुव-सम्प्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च॥ 16॥

सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम्।
सिद्धि-मुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य॥ 17॥

पञ्चमवस्तु-चतुर्थं - प्राभृतकस्यानुयोग-नामानि।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिमेव ॥18॥

बन्धन - निबन्धन - प्रक्रमानुपक्रम - मथाभ्युदय-मोक्षौ।
संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ॥ 19॥

सात-मसातं दीर्घं, ह्रस्वं भवधारणीय-सञ्ज्ञं च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च, निधत्तमनिधत्तमभिनौमि॥ 20॥

सनिकाचितमनिकाचित-मथकर्मस्थितिक-पश्चिमस्कन्धौ।
अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम्॥ 21॥

कोटीनां द्वादशशतमष्टापञ्चाशतं सहस्राणाम्।
लक्षत्र्यशीतिमेव च, पञ्च च वन्दे श्रुतपदानि॥ 22॥

षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां त्र्यशीति-लक्षाणि।
शतसंख्याष्टासप्तति-, मष्टाशीतिं च पदवर्णान्॥ 23॥

सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वन्दना प्रतिक्रमणम्।
वैनयिकं कृतिकर्म च, पृथुदशवैकालिकं च तथा॥ 24॥

वर-मुत्तराध्ययन-मपि, कल्पव्यवहार-मेव-मभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि, महाकल्पं पुण्डरीकं च॥ 25॥

परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च, प्रकीर्णकान्यङ्ग-बाह्यानि॥ 26॥

पुद्गल-मर्यादोक्तं, प्रत्यक्षं सप्रभेद-मवधिं च।
देशावधि-परमावधि-सर्वावधि-भेद-मभिवन्दे॥ 27॥

परमनसि स्थितमर्थं, मनसा परिविद्यमन्त्रि-महितगुणम्।
ऋजुविपुल-मतिविकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम्॥ 28॥

क्षायिकमनन्तमेकं, त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपदवभासम्।
सकल-सुख-धाम सततं, वन्देऽहं केवलज्ञानम्॥ 29॥

एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त-लोक-चक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि-र्ज्ञानफलं सौख्य-मच्यवनम्॥ 30॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं, अंगोवंग-पइण्णए-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणुओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

समाधिभक्ति

स्वात्माभिमुख-संवित्ति, लक्षणं श्रुत-चक्षुषा।
पश्यन्पश्यामि देव त्वां केवलज्ञान-चक्षुषा॥
शास्त्राभ्यासो, जिनपति-नुतिः सङ्गति सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां, गुणगण-कथा,दोषवादे च मौनम्॥ 1॥

सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे।
संपद्यन्तां, मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः॥ 2॥

जैनमार्ग-रुचिरन्यमार्ग निर्वेगता, जिनगुण-स्तुतौ मतिः।
निष्कलंक विमलोक्ति भावनाः संभवन्तु मम जन्मजन्मनि॥3॥

गुरुमूले यति-निचिते, - चैत्यसिद्धान्त वार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसनसमन्वितं मरणम्॥4॥

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्मकोटि समार्जितम्।
जन्म मृत्यु जरा मूलं, हन्यते जिनवन्दनात्॥ 5॥

आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवतः, श्रीपादयोः सेवया,
सेवासक्त-विनेयकल्प-लतया, कालोऽद्यया-वद्गतः।
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना, प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्णपठने,कण्ठोऽस्त्व-कुण्ठो मम॥6॥

तवपादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाण-संप्राप्तिः॥ 7॥

एकापि समर्थेयं, जिनभक्ति दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥ 8॥

पञ्च अरिंजयणामे पञ्च य मदि-सायरे जिणे वंदे।
पञ्च जसोयरणामे, पञ्च य सीमंदरे वंदे॥ 9॥

रयणत्तयं च वन्दे, चउवीस जिणे च सव्वदा वन्दे।
पञ्चगुरूणां वन्दे, चारणचरणं सदा वन्दे॥ 10॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे॥ 11॥

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥ 12॥

आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति-प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम्,
पायात्पञ्च-नमस्क्रियाक्षरमयी,साराधना देवता॥ 13॥

अनन्तानन्त संसार, - संततिच्छेद-कारणम्।
जिनराज-पदाम्भोज, स्मरणं शरणं मम॥ 14॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर!॥ 15॥

नहित्राता नहित्राता नहित्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति॥ 16॥

जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-, र्जिनेभक्ति-र्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे॥ 17॥

याचेऽहं याचेऽहं, जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।
याचेऽहं याचेऽहं, पुनरपि तामेव तामेव॥ 18॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥19॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूवपरमप्पज्झाण-लक्खणं समाहि-भत्तीये णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

आचार्य पूज्यपाद रचित संस्कृत भक्तियों का
आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा
हिन्दी पद्यानुवाद

सिद्धभक्ति

जिनके शुचि गुण परिचय पाकर वैसा बनने उद्यत हूँ।
विधि मल धो-धो, निजपन साधा वन्दू सिद्धों को नत हूँ॥
निजी योग्यता बाह्य योग से कनक कनकपाषाण यथा।
शुचि गुण-नाशक दोष नशन से आत्मसिद्धि वरदान तथा॥ 1॥

गुणाभाव यदि अभाव निज का सिद्धि रही, तप व्यर्थ रहें।
सुचिरबद्ध यह विधि फल-भोक्ता कर्म नष्ट कर अर्थ गहे॥
ज्ञाता-दृष्टा स्व-तन बराबर फैलन-सिकुड़नशाली है।
ध्रुवोत्पादव्यय गुणीजीव है यदि न, सिद्धि सो जाली है॥ 2॥

बाहर-भीतर यथाजात हो रत्नत्रय का खंग लिए।
घाति कर्म पर महाघात कर प्रकटे रवि से अंग लिए॥
छत्र, चँवर, भासुर, भामण्डल, समवसरण पा आप्त हुए।
अनन्त-दर्शन-बोध-वीर्य-सुख-समकित गुण चिर साथ हुए॥ 3॥

देखें - जानें युगपत् सब कुछ सुचिर काल तक ध्वान्त हरें।
परमत-खण्डन जिनमत-मण्डन करते जन-जन शान्त करें॥
निज से, निज में, निज को, निज ही, बने स्वयंभू वर्त रहे।
ज्योतिपुञ्ज की 'ज्ञानोदय' यह जय-जय,जय-जय करत रहे॥ 4॥

जड़ें उखाड़ी अघातियों की सुदूर फैली चेतन में।
हुए सुशोभित सूक्ष्मादिक गुण अनन्त क्षायिक वे क्षण में॥
और और विधि विभाव हटते-हटते अपने गुण उभरे।
ऊर्ध्व स्वभावी, अतः समय में लोक शिखर पर जा ठहरे॥ 5॥

नूतन तन का कारण छूटा, मिला हुआ कुछ कम उससे।
सुन्दर प्रतिछवि लिए सिद्ध हैं अमूर्त दिखते ना दृग से॥
भूख-प्यास से रोग-शोक से राग-रोष से मरणों से।
दूर दुःख से शिव सुख कितना? कौन कहे जड़ वचनों से॥ 6॥

घट-बढ़ ना हो विषय-रहित है प्रतिपक्षी से रहित रहा।
निरुपम शाश्वत सदा सदोदित सिद्धों का सुख अमित रहा॥
निज कारण से प्राप्त अबाधित स्वयं सातिशय धार रहा।
परनिरपेक्षित परमोत्तम है अन्त-हीन वह सार रहा॥ 7॥

श्रम, निद्रा जब अशुचि मिटी है शयन सुमन आदिक से क्या?
क्षुधा मिटी है, तृषा मिटी है, सरस अशन आदिक से क्या?
रोग - शोक की पीर मिटी है औषध भी अब व्यर्थ रहा?
तिमिर मिटा सब हुआ प्रकाशित दीपक से क्या अर्थ रहा?॥ 8॥

संयम-यम-नियमों से नय से आत्म-बोध से दर्शन से।
महायशस्वी महादेव हैं बने कठिन तप घर्षण से॥
हुये, हो रहे, होंगे वन्दित सुधी - जनों से सिद्ध महा।
उन सम बनने तीनों सन्ध्या उन्हें नमूँ कर-बद्ध यहाँ॥ 9॥

अञ्चलिका

दोहा

सिद्ध गुणों की भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग॥ 1॥

समदर्शन से, साम्य बोध से समचारित से युक्त हुए।
शिष्ट धर्म से पुष्ट हुए जो अष्ट कर्म से मुक्त हुए॥
सम्यक्त्वादिक अष्ट गुणों से मुख्य रूप से विलस रहे।
ऊर्ध्व स्वभावी बने तुरत जा, लोक शिखर पर निवस रहे॥ 2॥

विगत अनागत आगत के यूँ कुछ तो तप से सिद्ध हुए।
कुछ संयम से कुछ तो नय से कुछ चारित से सिद्ध हुए॥
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
पूजूँ वन्दू अर्चन कर लूँ नमन करूँ सब सिद्धन को॥ 3॥

कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो, जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥4॥

❑❑❑

चारित्रभक्ति

त्रिभुवन के जो इन्द्र बने हैं सजे-धजे आभरणों से।
हीरक-हारों कनक कुण्डलों किरीट-मणिमय किरणों से॥
जिससे मुनियों ने निज-पद में झुका लिए इन इन्द्रों को।
पूज्य पञ्च-आचार उसे मैं, वन्दूँ कह दूँ भविकों को॥ 1॥

शब्द, अर्थ औ उभय विकल ना यथाकाल उपधान तथा।
गुरु निह्नव ना बहुमति होना यथायोग्य सम्मान कथा॥
महाजाति कुल रजनीपति से, तीर्थकरों ने समझाया।
वसुविध ज्ञानाचार नमूँ मैं कर्म नष्ट हो मन भाया॥ 2॥

जिनमत-शंका परमत-शंसा विषयों की भी चाह नहीं।
सहधर्मी में वत्सलता हो साधु संत से डाह नहीं॥
जिनशासन को करो उजागर, पथ च्युत को पथ पर लाना।
नमूँ दर्शनाचार नम्र हो उपगूहन में रस आना॥ 3॥

नियमों से चर्या को बाँधे अनशन ऊनोदर करना।
इन्द्रिय गज-मदमत्त बने ना रसवर्जन बहुतर करना॥
शयनासन एकान्त जहाँ हो और तपाना निज तन को।
बाह्य हेतु शिव के छह तप इनकी थुति में रखता मन को॥ 4॥

करे ध्यान स्वाध्याय विनय भी तनूत्सर्ग भी सदा करे।
वृद्ध रुग्ण लघु गुरु यतियों के नित तन-मन की व्यथा हरे॥

दोष लगे तो तुरत दण्ड ले बने शुद्ध तप हैं प्यारे।
कषायरिपु के हनक, भीतरी इन्हें नमूँ बुध उर धारे॥ 5॥

जिसके लोचन सत्य बोध हैं आस्था जिसकी जिनमत में।
बिना छुपाये निज बल यति का तपना चलना शिव-पथ में॥
अछिद्र नौका-सम भव-दधि से शीघ्र कराता पार यहाँ।
नमूँ वीर्य-आचार इसे मैं बुध अर्चित गुण सार महा॥ 6॥

तीन गुप्तियाँ मन-वच-तन की, तथा महाव्रत पाँच सहीं।
ईर्या, भाषा, क्षेपण, एषण आदि समितियाँ पाँच रहीं॥
अपूर्व तेरह विध चारित है मात्र वीर के शासन में।
भाव भक्ति से पूर्ण शक्ति से इसे नमन हो क्षण-क्षण में॥ 7॥

शाश्वत स्वाश्रित सुषमा लक्ष्मी अनुपम सुख की आली है।
केवल दर्शन-बोध ज्योति है मनोरमा उजयाली है॥
उसको पाने दिगम्बरों को सब यतियों को नमन करूँ।
परम तीर्थ आचार यही है मंगल से अघ शमन करूँ॥ 8॥

पाप पुराना मिटता नूतन रुकता आना हो जिससे।
ऋद्धि सिद्धि परसिद्धि ऋषी में, बढ़े चरित से औ किससे?
प्रमाद वश यदि इस यतिपन में यतिपन से प्रतिकूल किया।
करता निज की निन्दा निन्दित मिथ्या हो अघ मूल क्रिया॥ 9॥

निकट भव्य हो एकलव्य हो दूर पाप से आप रहे।
केवल शिव सुख के यदि इच्छुक भव-दुःखों से काँप रहे॥
जैन-चरित सोपान मोक्ष का विशालतम है अतुल रहा।
आरोहण तुम इस पर कर लो आत्म तेज जब विपुल रहा॥ 10॥

अञ्चलिका

दोहा

महाचरित वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

सब में जिसको प्रधान माना कोई जिसके समा नहीं।
कर्म निर्जरा जिसका फल है जिसका भोजन क्षमा रही॥
समकित पर जो टिका हुआ है सत्य बोध को साथ लिया।
ज्ञान-ध्यान का साधनतम है रहा मोक्ष का पाथ जिया॥ 2॥
गुप्ति तीन से रहा सुरक्षित महाव्रतों का धारक है।
पाँच समितियों का पालक है पातक का संहारक है॥
जिससे संयत साधु सहज ही समता में है रम जाता।
सुनो! महा चारित्र यही है 'ज्ञानोदय' निशि दिन गाता॥ 3॥
अहो भाग्य है महाचरित को तन से मन से वचनों से।
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ दो नयनों से॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर मरण हो, जिनपद मुझको,मिले सामने सन्मति ओ!॥ 4॥

❑❑❑

योगिभक्ति

नरक–पतन से भीत हुए हैं जाग्रत–मति हैं मथित हुए।
जनन–मरण–मय शत–शत रोगों,से पीड़ित हैं व्यथित हुए॥
बिजली बादल–सम वैभव है जल–बुदबुद–सम जीवन है।
यूँ चिन्तन कर प्रशम हेतु मुनि वन में काटे जीवन है॥ 1॥

गुप्ति–समिति–व्रत से संयुत जो मन शिव–सुख की ओर रहा।
मोहभाव के प्रबल–पवन से जिनका मन ना डोल रहा॥
कभी ध्यान में लगे हुए है श्रुत–मन्थन में लीन कभी।
कर्म–मलों को धोना है सो तप करते स्वाधीन सुधी॥ 2॥

रवि–किरणों से तपी शिला पर सहज विराजे मुनिजन हैं।
विधि–बन्धन को ढीले करते जिनका मटमैला तन है॥
गिरि पर चढ़ दिनकर के अभिमुख, मुख करके हैं तप तपते।
ममत्व मत्सर मान रहित हो बने दिगम्बर–पथ नपते॥ 3॥

दिवस रहा हो रात रही हो बोधामृत का पान करें।
क्षमा नीर से सिंचित जिनका पुण्यकाय छविमान अरे!
धरें छत्र संतोष – भाव के सहज छाँव का दान करें।
यूँ सहते मुनि तीव्र–ताप को 'ज्ञानोदय' गुणगान करें॥ 4॥

मोर कण्ठ या अलि-सम काले इन्द्रधनुष युत बादल हैं।
गरजे बरसे बिजली तड़की झंझा चलती शीतल है॥
गगन दशा को देख निशा में और तपोधन तरुतल में।
रहते, सहते,कहते कुछ ना भीति नहीं मानस-तल में॥ 5॥

वर्षा ऋतु में जल की धारा मानो बाणों की वर्षा।
चलित चरित से फिर भी कब हो करते जाते संघर्षा॥
वीर रहे नर-सिंह रहे मुनि परिषह रिपु को घात रहे।
किन्तु सदा भव-भीत रहे हैं इनके पद में माथ रहे॥ 6॥

अविरल हिमकण जल से जिनकी काय-कान्ति ही चली गई।
साँय-साँय कर चली हवाएँ, हरियाली सब जली गई॥
शिशिर तुषारी घनी निशा को व्यतीत करते श्रमण यहाँ।
और ओढ़ते धृति-कम्बल हैं गनन तले भूशयन अहा!॥ 7॥

एक वर्ष में तीन योग ले बने पुण्य के वर्धक हैं।
बाह्याभ्यन्तर द्वादश-विध तप तपते हैं मद-मर्दक हैं॥
परमोत्तम आनन्द मात्र के प्यासे भदन्त ये प्यारे।
आधि-व्याधि औ उपाधि-विरहित समाधि हममें बस डारे॥ 8॥

ग्रीष्मकाल में आग बरसती गिरि-शिखरों पर रहते हैं।
वर्षा-ऋतु में कठिन परीषह तरुतल रहकर सहते हैं॥

तथा शिशिर हेमन्त काल में बाहर भू-पर सोते हैं।
वन्द्य साधु ये वन्दन करता दुर्लभ-दर्शन होते हैं॥ 9॥

अञ्चलिका

दोहा

योगीश्वर सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

अर्ध सहित दो द्वीप तथा दो सागर का विस्तार जहाँ।
कर्म-भूमियाँ पन्द्रह जिनमें संतों का संचार रहा॥
वृक्षमूल-अभ्रावकाश औ आतापन का योग धरें।
मौन धरें वीरासन आदिक, का भी जो उपयोग करें॥ 2॥
बेला, तेला, चोला, छह-ला, पक्ष, मास, छह मास तथा।
मौन रहें उपवास करें है करें न तन की दास कथा॥
भाव-भक्ति से चाव-शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ, पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ इन मुनिजन को॥ 3॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो, सद्गति हो।
वीर मरण हो, जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ!॥4॥

❑❑❑

आचार्यभक्ति

सिद्ध बने शिव-शुद्ध बने जो जिन की थुति में निरत रहे।
दावा-सम अति-कोप अनल को शान्त किये अति-विरत रहे॥
मनो-गुप्ति के वचन-गुप्ति के काय-गुप्ति के धारक हैं।
जब जब बोलें सत्य बोलते भाव शुद्ध-शिव साधक हैं॥ 1॥

दिन दुगुणी औ रात चउगुणी मुनि पद महिमा बढ़ा रहे।
जिन शासन के दीप्त दीप हो और उजाला दिला रहे॥
बद्ध-कर्म के गूढ़ मूल पर घात लगाते कुशल रहे।
ऋद्धि सिद्धि परसिद्धि छोड़कर शिवसुख पाने मचल रहे॥ 2॥

मूलगुणों की मणियों से है जिनकी शोभित देह रही।
षड् द्रव्यों का निश्चय जिनको जिनमें कुछ संदेह नहीं॥
समयोचित आचरण करे हैं प्रमाद के जो शोषक हैं।
समदर्शन से शुद्ध बने हैं निज गुण तोषक, पोषक हैं॥ 3॥

पर-दुःख-कातर सदय हृदय जो मोह-विनाशक तप धारे।
पञ्च-पाप से पूर्ण परे हैं पले पुण्य में जग प्यारे॥
जीव जन्तु से रहित थान में वास करे निज कथा करें।
जिनके मन में आशा ना है दूर कुपथ से तथा चरें॥ 4॥

बड़े-बड़े उपवासादिक से दण्डित ना बहुदण्डों से।
सुडौल सुन्दर तन मन से हैं मुख-मण्डल कर-डण्डों से॥

जीत रहे दो-बीस परीषह किरिया करने योग्य करे।
सावधान संधान ध्यान से प्रमाद हरने योग्य, हरे॥ 5॥

नियमों में हैं अचल मेरुगिरि कन्दर में असहाय रहे।
विजितमना हैं जित-इन्द्रिय हैं जितनिद्रक जितकाय रहे॥
दुस्सह दुखदा दुर्गति-कारण लेश्याओं से दूर रहे।
यथाजात हैं, जिन के तन है जल्ल-मल्ल से पूर रहे॥ 6॥

उत्तम-उत्तम भावों से जो भावित करते आतम को।
राग लोभ मात्सर्य शाठ्य मद को तजते हैं अघतम को॥
नहीं किसी से तुलना जिनकी जिनका जीवन अतुल रहा।
सिद्धासन मन जिनके चलता आगम मन्थन विपुल रहा॥ 7॥

आर्तध्यान से, रौद्रध्यान से पूर्णयत्न से विमुख रहे।
धर्मध्यान में, शुक्लध्यान में यथायोग्य जो प्रमुख रहे॥
कुगति मार्ग से दूर हुए हैं 'सुगति' ओर गतिमान हुए।
सात ऋद्धि रस गारव छोड़े पुण्यवान गणमान्य हुए॥ 8॥

ग्रीष्म काल में गिरि पर तपते वर्षा में तरुतल रहते।
शीतकाल आकाश तले रह व्यतीत करते अघ दहते॥
बहुजन हितकर चरित धारते पुण्य पुञ्ज है अभय रहे।
प्रभावना के हेतुभूत हैं महाभाव के निलय रहे॥ 9॥

इस विध अगणित गुणगण से जो सहित रहे हितसाधक हैं।
हे जिनवर! तव भक्तिभाव में लीन रहे गणधारक हैं॥
अपने दोनों कर-कमलों को अपने मस्तक पर धरके।
उनके पद कमलों में नमता बार-बार झुक-झुक करके॥ 10॥

कषायवश कटु-कर्म किये थे जन्म मरण से युक्त हुए।
वीतरागमय आत्म-ध्यान से कर्म नष्ट कर मुक्त हुए॥
प्रणाम उनको भी करता हूँ अखण्ड अक्षय-धाम मिले।
मात्र प्रयोजन यही रहा है सुचिर काल विश्राम मिले॥ 11॥

अञ्चलिका

मुनिगण-नायक भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

पञ्चाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा।
शिवपथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिवपथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का॥ 2॥

भावभक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ, पूजूँ, अर्चन करलूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो बोधिलाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥ 3॥

पञ्चमहागुरुभक्ति

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियाँ कई हजारा।
मणि की द्युति-जल से धुलते हैं, प्रभु पद-नमता सुख फलते हैं॥ 1॥

सम्यक्त्वादिक वसु-गुण धारे,वसु-विध विधि-रिपु नाशन-हारे।
अनेक-सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता समता हूँ॥ 2॥

श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पदकमलों को, शिर पर रख लूँ दुःख-दलनों को॥ 3॥

उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरण कर लूँ, पाप नष्ट हो सु-मरण कर लूँ॥ 4॥

समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा॥
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं॥ 5॥

विमल गुणालय-सिद्धजिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को॥
नमस्कार पद पञ्च इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से॥ 6॥

नमस्कार वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल-मात्र यही है॥ 7॥

सिद्ध शुद्ध हैं जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करें धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता॥ 8॥

सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गण नायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधु जनों को, वन्दूँ पाने उन्हीं गुणों को॥ 9॥

सुरपति चूड़ामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाँचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे॥10॥

महाप्रतिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्ट मातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की॥
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की॥ 11॥

अञ्चलिका

पञ्चमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग॥ 1॥

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगणित गुणगण मण्डित हैं।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित जिनवर पण्डित-पण्डित हैं॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा।
शिव पथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ॥ 2॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का॥
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को॥ 3॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥4॥

शान्तिभक्ति

नहीं स्नेह वश तव पद शरणा गहते भविजन पामर हैं।
यहाँ हेतु है बहु दुःखों से भरा हुआ भवसागर है॥
धरा उठी जल, ज्येष्ठ काल है भानु उगलता आग कहीं।
करा रहा क्या छाँव शशी के जल के प्रति अनुराग नहीं?॥ 1॥

कुपित कृष्ण अहि जिसको डंसता फैला हो वह विष तन में।
विद्या औषध हवन मन्त्र जल से मिट सकता है क्षण में॥
उसी भाँति जिन तुम पद-कमलों की थुति में जो उद्यत है।
पाप शमन हो रोग नष्ट हो चेतन तन के संगत है॥ 2॥

कनक मेरु आभा वाले या तप्त कनक की छवि वाले।
हे जिन! तुम पद नमते मिटते दुस्सह दुःख हैं शनि वाले॥
उचित रहा रवि उषाकाल में उदार उर ले उगता है।
बहुत जनों के नेत्रज्योति-हर सघन तिमिर भी भगता है॥ 3॥

सब पर विजयी बना तना है नाक-मरोड़ा दम तोड़ा।
देवों देवेन्द्रों को मारा नरपति को भी ना छोड़ा॥
दावा बन कर काल घिरा है उग्र रूप को धार घना।
कौन बचावे? हमें कहो जिन! तव पद थुति नद-धार बिना॥

लोकालोकालोकित करते ज्ञानमूर्ति हो जिनवर हे!।
बहुविध मणियाँ जड़ी दण्ड में तीन छत्र शित तुम सर पे॥
हे जिन! तव पद-गीत धुनी सुन रोग मिटे सब तन-मन के।
दाढ़-उघाड़े सिंह दहाड़े गज-मद गलते वन-वन के॥ 5॥

तुम्हें देवियाँ अथक देखती विभव मेरु पर तव गाथा।
बाल भानु की आभा हरता मण्डल तव जन-जन भाता॥
हे जिन! तव पद थुति से ही सुख मिलता निश्चय अटल रहा।
निराबाध नित विपुल सार है अचिंत्य अनुपम अटल रहा॥ 6॥

प्रकाश करता प्रभा पुञ्ज वह भास्कर जब तक ना उगता।
सरोवरों में सरोज दल भी तब तक खिलता ना जगता॥
जिसके मानस-सर में जब तक जिनपद पंकज ना खिलता।
पाप-भार का वहन करे वह भ्रमण भवों में ना टलता॥ 7॥

प्यास शान्ति की लगी जिन्हें है तव पद का गुण गान किया।
शान्तिनाथ जिन शान्त भाव से परम शान्ति का पान किया॥
करुणाकर! करुणा कर मुझको प्रसन्नता में निहित करो।
भक्तिमग्न है भक्त आपका दृष्टि-दोष से रहित करो॥ 8॥

शरद शशी सम शीतल जिनका नयन मनोहर आनन है।
पूर्ण शील के व्रत संयम के अमित गुणों के भाजन है॥
शत वसु लक्षण से मण्डित है जिनका औदारिक तन है।
नयन कमल हैं जिनवर जिनके शान्तिनाथ को वन्दन है॥ 9॥

चक्रधरों में आप चक्रधर पञ्चम हैं गुण मंडित हैं।
तीर्थकरों में सोलहवें जिन सुर-नरपति से वंदित हैं॥
शान्तिनाथ हो विश्वशान्ति हो भाँति-भाँति की भ्रान्ति हरो।
प्रणाम ये स्वीकार करो लो किसी भाँति मुझ कान्ति भरो॥ 10॥

दुंदुभि बजते पुष्प बरसते, आतप हरते चामर ढुरते।
भामण्डल की आभा भारी, सिंहासन की छटा निराली॥
अशोक तरु सो शोक मिटाता, भविक जनों से ढोक दिलाता।
योजन तक जिन घोष फैलता, समवसरण में तोष तैरता॥ 11॥

झुका-झुका कर मस्तक से मैं शान्तिनाथ को नमन करूँ।
देव जगत भूदेव जगत से वन्दित पद में रमण करूँ॥
चराचरों को शान्तिनाथ वे परम शान्ति का दान करें।
थुति करने वाले मुझमें भी परम तत्त्व का ज्ञान भरें॥ 12॥

पहने कुण्डल मुकुट हार हैं सुर हैं सुरगण पालक हैं।
जिनसे निशि-दिन पूजित अर्चित जिनपद भवदधि तारक हैं॥

विश्व विभासक-दीपक हैं जिन विमलवंश के दर्पण हैं।
तीर्थङ्कर हो शान्ति विधायक यही भावना अर्पण है॥ 13॥

भक्तों को भक्तों के पालन-हारों को औ यक्षों को।
यतियों-मुनियों-मुनीश्वरों को तपोधनों को दक्षों को॥
विदेश-देशों उपदेशों को पुरों गोपुरों नगरों को।
प्रदान कर दें शान्ति जिनेश्वर विनाश कर दें विघ्नों को॥ 14॥

क्षेम प्रजा का सदा बली हो धार्मिक हो भूपाल फले।
समय-समय पर इन्द्र बरस ले व्याधि मिटे भूचाल टले॥
अकाल, दुर्दिन, चोरी आदिक कभी रोग ना हो जग में।
धर्मचक्र जिनका हम सबको सुखद रहे सुर शिव मग में॥15॥

ध्यान शुक्ल के शुद्ध अनल से घातिकर्म को ध्वस्त किया।
पूर्णबोध-रवि उदित हुआ सो भविजन को आश्वस्त किया॥
वृषभदेव से वर्धमान तक चार-बीस तीर्थङ्कर हैं।
परम शान्ति की वर्षा जग में यहाँ करें क्षेमंकर हैं॥ 16॥

अञ्चलिका

दोहा

पूर्ण शान्ति वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

पञ्चमहाकल्याणक जिनके जीवन में हैं घटित हुए।
समवसरण में महा दिव्य वसु प्रातिहार्य से सहित हुए॥
नारायण से, रामचन्द्र से छहखण्डों के अधिपति से।
यति अनगारों ऋषि मुनियों से पूजित जो हैं गणपति से॥ 2॥

वृषभदेव से महावीर तक महापुरुष मंगलकारी।
लाखों स्तुतियों के भाजन हैं तीस-चार अतिशयधारी॥
भक्तिभाव से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं जिनगण को॥ 3॥

कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ॥ 4॥

❑❑❑

निर्वाणभक्ति

अतुल रहा है अचल रहा है विपुल रहा है विमल रहा।
निरा निरामय निरुपम शिवसुख मिला वीर को सबल रहा॥
नर-नागेन्द्रों खगपतियों से, अमरेन्द्रों से वन्दित हैं।
भूतेन्द्रों से, यक्षेन्द्रों से, कुबेर से अभिनन्दित हैं॥ 1॥

औरों का वह भाग्य कहाँ है पाँच-पाँच कल्याण गहे।
भविक जनों को तुष्टि दिलाते वर्धमान वरदान रहे॥
तीन लोक के आप परमगुरु पाप मात्र से दूर रहे।
स्तवन करूँ तव भाव-भक्ति से पुण्य भाव भरपूर रहे॥ 2॥

दीर्घ दिव्य सुख-भोग भोगते पुष्पोत्तर के स्वामी हो।
आयु पूर्णकर अच्युत से च्युत हो शिवसुख परिणामी हो॥
आषाढ़ी के शुक्लपक्ष की छटी-छठी तिथि में उतरे।
हस्तोत्तर के मध्य शशी है नभ में तारकगण बिखरे॥ 3॥

विदेहनामा कुण्डपुरी है, प्रतिभा-रत इस भारत में।
प्रियंकारिणी देवी त्रिशला सेवारत सिद्धारथ में॥
शुभफल देने वाले सोलह स्वप्नों को तो दिया दिखा।
वैभवशाली यहाँ गर्भ में बालक आया 'दीया' दिखा॥ 4॥

चैत्र मास है, शुक्लपक्ष है, तेरस का शुभ दिवस रहा।
महावीर का धीर वीर का जनम हुआ यश बरस रहा॥
तभी उत्तरा फाल्गुनि पर था शशांक का भी संग रहा।
शेष सौम्य ग्रह निज उत्तम पद, गहे लग्न भी चंग रहा॥ 5॥

अगला दिन वह चतुर्दशी का हस्ताश्रित है सोम रहा।
उषाकाल से प्रथम याम में, शान्त-शान्त भू-व्योम रहा॥
पाण्डुक की शुचि मणी शिला पर, बिठा वीर को इन्द्रों ने।
न्हवन कराया रत्नघटों से, देखा उसको देवों ने॥ 6॥

तीन दशक तक कुमार रहकर अनन्त गुण से खिले हुए।
भोगों उपभोगों को भोगा देवों से जो मिले हुए॥
तभी यकायक उदासीन से अनासक्त हो विषयों से।
और वीर ये सम्बोधित हो ब्रह्मलोक के ऋषियों से॥ 7॥

झालर, झूमर, मणियाँ, लटकी झरझुर-झरझुर रूपवती।
'चन्द्रप्रभा' यह दिव्य पालिका रची हुई बहुकूटवती॥
वीर हुये आरूढ़ इसी पर कुण्डपुरी से निकल गए।
वीतराग को राग देखता जन-जन परिजन विकल हुए॥ 8॥

मगसिर का यह मास रहा है और कृष्ण का पक्ष रहा।
यथा जन्म में हस्तोत्तर के मध्य शशी अध्यक्ष रहा॥

दशमी का मध्याह्न काल है बेला का संकल्प किया।
वीर आप जिन बने दिगम्बर मन को चिर अविकल्प किया॥ 9॥

ग्राम नगर में प्रतिपट्टण में पुर-गोपुर में गोकुल में।
अनियत विहार करते प्रतिदिन निर्जन जन-जन संकुल में॥
द्वादश वर्षों द्वादश विध तप उग्र-उग्रतर तपते हैं।
अमर समर सब जिन्हें पूजते कष्टों में ना कँपते हैं॥ 10॥

ऋजुकूला सरिता के तट पर बसा जृंभिका गाँव रहा।
शिला बिछी है सहज सदी से शाल वृक्ष की छाँव जहाँ॥
खड़े हुये मध्याह्न काल में दो दिन के उपवास लिए।
आत्मध्यान में लीन हुए हैं तन का ना अहसास किए॥ 11॥

तिथि दशमी वैशाख मास है शुक्लपक्ष का स्वागत है।
हस्तोत्तर के मध्य शशी है शान्त कान्ति से भास्वत है॥
क्षपक श्रेणी पर वीर चढ़ गए निर्भय हो भव-भीत हुए।
घाति-घात कर दिव्य बोध को, पाए मृदु नवनीत हुए॥ 12॥

नयन मनोहर हर दिल हरते हर्षित हो प्रति अंग यहाँ।
महावीर वैभारगिरी पर लाए चउविध संघ महा॥
श्रमण-श्रमणियाँ तथा श्राविका-श्रावकगण सागारों में।
गौतम गणधर प्रमुख रहे हैं ऋषि यति मुनि अनगारों में॥ 13॥

दुम-दुम-दुम-दुम दुंदुभि बजना दिव्य ध्वनी का वह खिरना।
सुरभित सुमनावलि का गिरना चउसठ चामर का ढुरना॥
तीन छत्र का सर पर फिरना औ भामण्डल का घिरना।
स्फटिक मणी का सिंहासन सो अशोक तरु का भी तनना।
समवशरण में प्रातिहार्य का हुआ वीर को यूँ मिलना॥ 14॥

सागारों को ग्यारह प्रतिमाओं का है उपदेश दिया।
अनगारों को क्षमादि दशविध धर्मों का निर्देश दिया॥
इस विध धर्मामृत की वर्षा करते विहार करते हैं।
तीस वर्ष तक वीर निरन्तर जग का सुधार करते हैं॥ 15॥

कई सरोवर परिसर जिनमें भाँति-भाँति के कमल खिले।
तरह-तरह के लघु-गुरु तरुवर फूले महके सफल फले॥
अमर रमें रमणीय मनोहर पावानगरी उपवन में।
बाह्य खड़े जिन तनूत्सर्ग में भीतर में तो चेतन में॥ 16॥

कार्तिक का यह मास रहा है तथा कृष्ण का पक्ष रहा।
कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि है स्वाती का तो ऋक्ष रहा॥
शेष रहे थे चउकर्मों को वर्द्धमान ने नष्ट किया।
अजरअमर बन अक्षयसुख से आतम को परिपुष्ट किया॥ 17॥

प्राप्त किया निर्वाण दशा को वीर चले शिव-धाम गए।
ज्ञात किया बस इन्द्र उतरते धरती पर जिन नाम लिए॥

धरती दुर्लभ देवदारु है स्वर्ग सुलभ लहु-चन्दन है।
कालागुरु गोशीर्ष साथ है लाये सुरभित नन्दन है॥ 18॥

धूप फलों से जिनवर तन का गणधर का अर्चन करके।
अनलेन्द्रों के मुकुट अनल से जला वीर तन पल भर में॥
वैमानिक सुर तो स्वर्गों में ज्योतिष नभ में यानों में।
व्यन्तर बिखरे निज-निज वन में शेष गये बस भवनों में॥ 19॥

इस विध दोनों संध्याओं में तन से मन से भाषा से।
वर्द्धमान का स्तोत्र - पाठ जो करते हैं बिन आशा से॥
देव लोक में मनुज लोक में अनन्य दुर्लभ सुख पाते।
और अन्त में शिवपद पाते किन्तु लौटकर ना आते॥ 20॥

गणधर देवों श्रुतपारों व तीर्थकरों के 'अन्त' जहाँ।
वहीं बनी निर्वाणभूमियाँ भारत सो यशवन्त रहा॥
शुद्ध वचन से, मन से, तन से नमन उन्हें शत बार करूँ।
स्तवन उन्हीं का करूँ आज मैं बार-बार जयकार करूँ॥ 21॥

प्रथम तीर्थकर महामना वे पूर्ण-शील से युक्त हुए।
शैल-शिखर कैलाश जहाँ पर कर्म-काय से मुक्त हुए॥
चम्पापुर में वासुपूज्य ये परम पूज्य पद पाए हैं।
राग-रहित हो बन्ध-रहित हो शुद्ध चेतना लाए हैं॥ 22॥

जिसको पाने देवलोक में, इन्द्र-देव सब तरस रहे।
साधु गवेषक बने उसी के, उसी हेतु मन हरष रहे॥
ऊर्जयन्त गिरनारगिरी पर उसी मोक्ष को साध लिया।
अरिष्टनेमि ने कर्म नष्टकर सिद्धि साधु का स्वाद लिया॥ 23॥

पावापुर के बाहर आते विशाल उन्नत थान रहा।
जिसको घेरे कमल-सरोवर नन्दन-सा छविमान रहा॥
'यहीं' पाप धो धवलिम होकर वर्धमान निर्वाण गहे।
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ 'ज्ञानोदय' गुणखान रहे॥ 24॥

मोह मल्ल को जीत लिया जो बीस तीर्थकर शेष रहे।
ज्ञान-भानु से किया प्रकाशित त्रिभुवन को अनिमेष रहे॥
तीर्थराज सम्मेदाचल पर योगों का प्रतिकार किया।
असीम सुख में डूब गये फिर भवसागर का पार लिया॥ 25॥

योग-रोक कर चउदह दिन तक वृषभदेव फिर मुक्त हुए।
वर्द्धमान को लगे दिवस दो अयोग बनकर गुप्त हुए॥
शेष तीर्थकर तनूत्सर्ग में एक मास तक शान्त रहे।
सयोगपन तज अयोगगुण पा लोकशिखर का प्रान्त गहे॥ 26॥

वचनमयी थुति कुसुमों से शुभ मालाओं को बना-बना।
मानस-कर से दिशा-दिशा में बिखराएँ हम हर्ष मना॥
इन तीर्थों की परिक्रमा भी सादर सविनय सदा करे।
यही प्रार्थना किन्तु करें हम सिद्धि मिले आपदा हरे॥ 27॥

पक्षपात तज कर्मपक्ष पर पाण्डव तीनों टूट पड़े।
शत्रुंजयगिरि पर शत्रुंजय बने बन्ध से छूट पड़े॥
तुंगीगिरि पर अंग-रहित हो राम सदा अभिराम बने।
नदी तीर पर स्वर्णभद्र मुनि बने सिद्ध विधिकाम हने॥ 28॥

सिद्धकूट वैभार तुंग पर श्रमणाचल विपुलाचल में।
पावन कुण्डलगिरि पर मुक्तागिरि पर श्रीविंध्याचल में॥
तप के साधन द्रोणगिरि पर पौदनपुर के अञ्चल में।
सिंह दहाड़े सह्याचल में दुर्गम बलाहकाचल में॥ 29॥

गजदल टहले गजपंथा में हिम गिरता हिमगिरिवर में।
दंडात्मक पृथुसार यष्टि में पूज्य प्रतिष्ठक भूधर में॥
साधु-साधना करते बनते निर्मल पञ्चमगति पाते।
स्थान हुए ये प्रसिद्ध जग में कर लूँ इनकी थुदि तातैं॥ 30॥

पुण्य पुरुष ये जहाँ विचरते पुजती धरती माटी है।
आटे में गुड़ मिलता जैसे और मधुरता आती है॥ 31॥

गणधर देवों अरहन्तों की मौनमना मुनिराजों की।
कहीं गई निर्वाणभूमियाँ मुझसे कुछ गिरिराजों की॥
विजितमना जिन शान्तमना मुनि जो हैं भय से दूर सदा।
यही प्रार्थना मेरी उनसे सद्गति दें सुख पूर सुधा॥ 32॥

'वृषभ' वृषभ का चिह्न अजित का 'गज' संभव का 'घोट' रहा।
अभिनन्दन का 'वानर' माना और सुमति का 'कोक' रहा॥
छटे सातवें अष्टम जिन का 'सरोज' 'स्वस्तिक' 'चन्दा' है।
नवम दशम ग्यारहवें जिन का 'मकर' 'कल्पतरु' 'गेंडा' है॥ 33॥

वासुपूज्य का 'भैंसा' 'सूकर' विमलनाथ का औ 'सेही'।
अनन्त का है 'वज्र' धर्म का शान्तिनाथ का 'मृगदेही'॥
कुन्थु अरह का 'अज' 'मीना' है 'कलश' मल्लि का 'कूर्म' रहा।
मुनिसुव्रत का नमी नेमि का 'नीलकमल' है 'शंख' रहा।
पार्श्वनाथ का 'नाग' रहा है वर्धमान का 'सिंह' रहा॥ 34॥

उग्रवंश के पार्श्वनाथ हैं, नाथवंश के वीर रहे।
मुनिसुव्रत और नेमिनाथ हैं यदुवंशी हैं धीर रहे॥
कुरुवंशी हैं शान्तिनाथ हैं कुन्थुनाथ अरनाथ रहे।
रहे शेष इक्ष्वाकुवंश के इन पद में मम माथ रहे॥ 35॥

अञ्चलिका

दोहा

निर्वाणों की भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

काल बीतता चतुर्थ में जब पक्ष नवासी शेष रहे।
कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के सौ-सौ श्वाँसें शेष रहे॥
भोर स्वाति की पावा में है वर्धमान शिव-धाम गए।
देव चतुर्विध साथ स्वजन ले ले आते जिन नाम लिए॥ 2॥

दिव्य गन्ध ले, दिव्य दीप ले, दिव्य-दिव्य ले सुमनलता।
दिव्य चूर्ण ले, दिव्य न्हवन ले, दिव्य-दिव्य ले वसन तथा॥
अर्चन, पूजन, वन्दन करते, करते नियमित नमन सभी।
निर्वाणक कल्याण मनाकर करते निज घर गमन तभी॥ 3॥

सिद्धभूमियों को नित मैं भी यही भाव निर्मल करके।
अर्चन पूजन वन्दन करता प्रणाम करता झुक करके॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥ 4॥

❑❑❑

नंदीश्वरभक्ति

जय-जय-जय जयवन्त जिनालय नाश रहित हैं शाश्वत हैं।
जिनमें जिनमहिमा से मण्डित, जैन बिम्ब हैं भास्वत हैं॥
सुरपति के मुकुटों की मणियाँ झिलमिल झिलमिल करती हैं।
जिनबिम्बों के चरण-कमल को, धोती हैं, मन हरती हैं॥ 1॥

सदा-सदा से सहज रूप से शुचितम प्राकृत छवि वाले।
रहे जिनालय धरती पर ये श्रमणों की संस्कृति धारे॥
तीनों संध्याओं में इनको तन से मन से वचनों से।
नमन करूँ धोऊँ अघ-रज को छूटूँ भव-वन भ्रमणों से॥ 2॥

भवनवासियों के भवनों में तथा जिनालय बने हुए।
तेज कान्ति से दमक रहे हैं और तेज सब हने हुए॥
जिन की संख्या जिन आगम में, सात कोटि की मानी है।
साठ-लाख दस लाख और दो लाख बताते ज्ञानी हैं॥ 3॥

अगणित द्वीपों में अगणित हैं अगणित गुण गण मण्डित हैं।
व्यन्तर देवों से नियमित जो पूजित संस्तुत वन्दित हैं॥
त्रिभुवन के सब भविकजनों के नयन मनोहर सुन प्यारे।
तीन लोक के नाथ जिनेश्वर मन्दिर हैं शिवपुर द्वारे॥ 4॥

सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादिक तारक दल गगनांगन में।
कौन गिने वह अनगिन हैं, ये अनगिन जिनगृह हैं जिनमें॥
जिनका वन्दन प्रतिदिन करते शिव सुख के वे अभिलाषी।
दिव्य देह ले देव-देवियाँ ज्योतिर्मण्डल अधिवासी॥ 5॥

नभ-नभ स्वर-रस केशव-सेना मद हो सोलह कल्पों में।
आगे पीछे तीन बीच दो शुभतर कल्पातीतों में॥
इस विधि शाश्वत ऊर्ध्वलोक में सुखकर ये जिनधाम रहे।
अहो भाग्य हो नित्य निरन्तर होठों पर जिन नाम रहे॥ 6॥

अलोक का फैलाव कहाँ तक लोक कहाँ तक फैला है?
जाने जो जिन हैं जय-भाजन मिटा उन्हीं का फेरा है॥
कही उन्हीं ने मनुज लोक के चैत्यालय की गिनती है।
चार शतक अट्ठावन ऊपर जिन में मन रम विनती है॥ 7॥

आतम-मद-सेना-स्वर-केशव-अंग-रंग फिर याम कहे।
ऊर्ध्वमध्य औ अधोलोक में यूँ सब मिल जिन-धाम रहे॥ 8॥

किसी ईश से निर्मित ना हैं शाश्वत हैं स्वयमेव सदा।
दिव्य भव्य जिन मन्दिर देखो छोड़ो मन अहमेव मुधा॥
जिनमें आर्हत प्रतिभा-मण्डित प्रतिमा न्यारी प्यारी हैं।
सुरासुरों से सुरपतियों से पूजी जाती सारी हैं॥ 9॥

रुचक-कुण्डलों-कुलाचलों पर क्रमशः चउ-चउ तीस रहें।
वक्षारों-गिरि विजयार्द्धों पर शत शत-सत्तर ईश कहें॥
गिरि इषुकारों उत्तरगिरियों कुरुओं में चउ-चउ दश हैं।
तीन शतक छह बीस जिनालय गाते इनमें हम यश हैं॥ 10॥

द्वीप रहा हो अष्टम जिसने 'नन्दीश्वर' वर नाम धरा।
नन्दीश्वर सागर से पूरित आप घिरा अभिराम खरा॥
शशि-सम शीतल जिसके अतिशय यश से बस दश दिशा खिली।
भूमण्डल ही हुआ प्रभावित इस ऋषि को भी दिशा मिली॥11॥

इसी द्वीप में चउ दिशियों में चउ गुरु अञ्जन गिरिवर हैं।
इक-इक अञ्जनगिरि सम्बन्धित चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं॥
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर-गिरि चर्चित हैं।
पावन बावन गिरि पर बावन जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं॥ 12॥

एक वर्ष में तीन बार शुभ अष्टाह्निक उत्सव आते।
एक प्रथम आषाढ़ मास में कार्तिक फाल्गुन फिर आते॥
इन मासों के शुक्ल पक्ष में अष्ट दिवस अष्टम तिथि से।
प्रमुख बना सौधर्म इन्द्र को भूपर उतरे सुर गति से॥ 13॥

पूज्य द्वीप नन्दीश्वर जाकर प्रथम जिनालय वन्दन ले।
प्रचुर पुष्प-मणि दीप धूप ले दिव्याक्षत ले चन्दन ले॥
अनुपम अद्भुत जिन प्रतिमा की जग-कल्याणी गुरुपूजा।
भक्ति-भाव से करते हे मन! पूजा में खो-जा तू जा॥ 14॥

बिम्बों के अभिषेक कार्यरत हुआ इन्द्र सौधर्म महा।
दृश्य बना उसका क्या वर्णन भाव-भक्ति सो-धर्म रहा॥
सहयोगी बन उसी कार्य में शेष इन्द्र जयगान करें।
पूर्णचन्द्र-सम निर्मल यश ले प्रसाद गुण का पान करें॥ 15॥

इन्द्रों की इन्द्राणी मंगल कलशादिक लेकर सर पै।
समुचित शोभा और बढ़ाती गुणवन्ती इस अवसर पै॥
छाँ-छुम छाँ-छुम नाच नाचतीं सुर-नटियाँ हैं सस्मित हो।
सुनो! शेष अनिमेष सुरासुर दृश्य देखते विस्मित हो॥ 16॥

वैभवशाली सुरपतियों के भावों का परिणाम रहा।
पूजन का यह सुखद महोत्सव दृश्य बना अभिराम रहा॥
इसके वर्णन करने में जब, सुनो! वृहस्पति विफल रहा।
मानव में फिर शक्ति कहाँ वह? वर्णन करने मचल रहा॥ 17॥

जिन-पूजन अभिषेक पूर्णकर अक्षत केसर चन्दन से।
बाहर आये देव दिख रहे रंगे-रंगे से तन-मन से॥
तथा दे रहे प्रदक्षिणा हैं नन्दीश्वर जिनभवनों की।
पूज्य पर्व को पूर्ण मनाते स्तुति करते जिन-श्रमणों की॥ 18॥

सुनो! वहाँ से मनुज-लोक में सब मिलकर सुर आते हैं।
जहाँ पाँच शुभ मन्दरगिरि हैं शाश्वत चिर से भाते हैं॥

भद्रशाल नन्दन सुमनस औ पाण्डुक वन ये चार जहाँ।
प्रति-मन्दर पर रहे तथा प्रतिवन में जिनगृह चार महा॥ 19॥

मन्दर पर भी प्रदक्षिणा दे करें जिनालय वन्दन हैं।
जिन-पूजन अभिषेक तथा कर करें शुभाशय नन्दन हैं॥
सुखद पुण्य का वेतन लेकर जो इस उत्सव का फल है।
जाते निज-निज स्वर्गों को सुर यहाँ धर्म ही सम्बल है॥ 20॥

तरह-तरह के तोरण-द्वारे, दिव्य वेदिका और रहें।
मानस्तम्भों यागवृक्ष औ उपवन चारों ओर रहें॥
तीन-तीन प्राकार बने हैं विशाल मण्डप ताने हैं।
ध्वजा पंक्ति का दशक लसे चउ-गोपुर गाते गाने हैं॥ 21॥

देख सकें अभिषेक बैठकर धाम बने नाटक गृह हैं।
जहाँ सदन संगीत साध के क्रीड़ागृह कौतुकगृह हैं॥
सहज बनीं इन कृतियों को लख शिल्पी होते अविकल्पी।
समझदार भी नहीं समझते सूझ-बूझ सब हो चुप्पी॥ 22॥

थाली-सी है गोल वापिका पुष्कर हैं चउ-कोन रहे।
भरे लबालब जल से इतने कितने गहरे कौन कहे?
पूर्ण खिले हैं महक रहे हैं जिन में बहुविध कमल लसे।
शरद काल में जिस विध नभ में शशि ग्रह तारक विपुल लसें॥ 23॥

झारी लोटे घट कलशादिक उपकरणों की कमी नहीं।
प्रति जिनगृह में शत-वसु शत-वसु शाश्वत मिटते कभी नहीं॥

वर्णाकृति भी निरी-निरी है जिन की छवि प्रतिछवि भाती।
जहाँ घंटियाँ झन-झन-झन-झन बजती रहती ध्वनि आती॥ 24॥

स्वर्णमयी ये जिन मन्दिर यूँ युगों-युगों से शोभित हैं।
गन्धकुटी में सिंहासन भी सुन्दर-सुन्दर द्योतित हैं॥
नाना दुर्लभ वैभव से ये परिपूरित हैं रचित हुए।
सुनो! यहीं त्रिभुवन के वैभव जिनपद में आ प्रणत हुए॥ 25॥

इन जिनभवनों में जिनप्रतिमा ये हैं पद्मासन वाली।
धनुष पञ्चशत प्रमाणवाली प्रति-प्रतिमा शुभ छवि वाली॥
कोटि-कोटि दिनकर आभा तक मन्द-मन्द पड़ जाती है।
कनक रजत मणि निर्मित सारी झग-झग, झग-झग भाती हैं॥ 26॥

दिशा-दिशा में अतिशय शोभा महातेज यश धार रहें।
पाप मात्र के भंजक हैं ये भवसागर के पार रहें॥
और और फिर भानुतुल्य इन जिनभवनों को नमन करूँ।
स्वरूप इनका कहा न जाता मात्र मौन हो नमन करूँ॥ 27॥

धर्मक्षेत्र ये एक शतक औ सत्तर हैं षट् कर्म जहाँ।
धर्मचक्रधर तीर्थकरों के दर्शित है जिनधर्म यहाँ॥
हुए, हो रहे, होंगे उन सब तीर्थकरों को नमन करूँ।
भाव यही है 'ज्ञानोदय' में रमण करूँ भव-भ्रमण हरूँ॥ 28॥

इस अवसर्पिणि में इस भू पर वृषभनाथ अवतार लिया।
भर्ता बन युग का पालन कर धर्म-तीर्थ का भार लिया॥
अन्त-अन्त में अष्टापद पर तप का उपसंहार किया।
पापमुक्त हो मुक्ति सम्पदा प्राप्त किया उपहार जिया॥ 29॥

बारहवें जिन 'वासुपूज्य' हैं परम पुण्य के पुञ्ज हुए।
पाँचों कल्याणों में जिनको सुरपति पूजक पूज गए॥
'चम्पापुर' में पूर्ण रूप से कर्मों पर बहु मार किए।
परमोत्तम पद प्राप्त किए औ विपदाओं के पार गए॥ 30॥

प्रमुदित मति के राम-श्याम से 'नेमिनाथ' जिन पूजित हैं।
कषाय-रिपु को जीत लिए हैं प्रशमभाव से पूरित हैं॥
'ऊर्जयन्त गिरनार शिखर' पर जाकर योगातीत हुए।
त्रिभुवन के फिर चूड़ामणि हो मुक्तिवधू के प्रीत हुए॥ 31॥

'वीर' दिगम्बर श्रमण गुणों को पाल बने पूरण ज्ञानी।
मेघनाद-सम दिव्य नाद से जगा दिया जग सद्ध्यानी॥
'पावापुर' वर सरोवरों के मध्य तपों में लीन हुए।
विधि गुण विगलित कर अगणित गुण शिवपद पा स्वाधीन हुए॥ 32॥

जिसके चारों ओर वनों में मद वाले गज बहु रहते।
'सम्मेदाचल' पूज्य वही है पूजो इसको गुरु कहते॥
शेष रहे 'जिन बीस तीर्थंकर' इसी अचल पर अचल हुए।
अतिशय यश को शाश्वत सुख को पाने में वे सफल हुए॥ 33॥

मूक तथा उपसर्ग अन्तकृत अनेक विध केवलज्ञानी।
हुए विगत में यति मुनि गणधर कु-सु-मत ज्ञानी विज्ञानी॥
गिरि वन तरुओं गुफा कंदरों सरिता सागर तीरों में।
तप साधन कर,मोक्ष पधारे, अनल शिखा मरु टीलों में॥ 34॥

मोक्ष साध्य के हेतुभूत ये स्थान रहें पावन सारे।
सुरपतियों से पूजित हैं सो इन की रज शिर पर धारें॥
तपोभूमि ये पुण्य-क्षेत्र ये तीर्थ-क्षेत्र ये अघहारी।
धर्मकार्य में लगे हुए हम सबके हों मंगलकारी॥ 35॥

दोष रहित हैं, विजितमना हैं जग में जितने जिनवर हैं।
जितनी जिनवर की प्रतिमाएँ तथा जिनालय मनहर हैं॥
समाधि साधित भूमि जहाँ मुनि-साधक के हों चरण पड़े।
हेतु बने ये भविकजनों के भव-लय में हम चरण पड़ें॥ 36॥

उत्तम यशधर जिनपतियों का स्तोत्र पढ़े निजभावों में।
तन से मन से और वचन से तीनों संध्या कालों में॥
श्रुतसागर के पार गए उन मुनियों से जो संस्तुत हैं।
यथाशीघ्र वह अमित पूर्ण पद पाता सम्मुख प्रस्तुत है॥ 37॥

मलमूत्रों का कभी न होना रुधिर क्षीर-सम श्वेत रहे।
सर्वांगों में सामुद्रिकता सदा - सदा ना स्वेद रहे॥

रूप सलोना, सुरभित होना, तन-मन में शुभ लक्षणता।
हित-मित-मिश्री मिश्रितवाणी सुन लो! और विलक्षणता॥ 38॥

अतुल-वीर्य का सम्बल होना प्राप्त आद्य संहनन पना।
ज्ञात तुम्हें हो ख्यात रहे हैं स्वतिशय दश ये गुणनपना॥
जन्म-काल से मरण-काल तक ये दश अतिशय सुनते हैं।
तीर्थकरों के तन में मिलते अमितगुणों को गुनते हैं॥ 39॥

कोश चार शत सुभिक्षता हो अधर गगन में गमन सही।
चउ विध कवलाहार नहीं हो किसी जीव का हनन नहीं॥
केवलता या श्रुतकारकता उपसर्गों का नाम नहीं।
चतुर्मुखी का होना तन की छाया का भी काम नहीं॥ 40॥

बिना बढ़े वह सुचारुता से नख केशों का रह जाना।
दोनों नयनों के पलकों का स्पन्दन ही चिर मिट जाना॥
घातिकर्म के क्षय के कारण अर्हन्तों में होते हैं।
ये दश अतिशय इन्हें देख बुध पल भर सुध-बुध खोते हैं॥ 41॥

अर्धमागधी भाषा सुख की सहज समझ में आती है।
समवसरण में सब जीवों में मैत्री घुल-मिल जाती है॥
एक साथ सब ऋतुएँ फलती 'क्रम' के सब पथ रुक जाते।
लघुतर, गुरुतर, बहुतर तरुवर फूल फलों से झुक जाते॥ 42॥

दर्पण-सम शुचि रत्नमयी हो झग-झग करती धरती है।
सुरपति,नरपति यतिपतियों के जन-जन के मन हरती है॥
जिनवर का जब विहार होता पवन सदा अनुकूल बहे।
जन-जन परमानन्द गन्ध में डूबे दुःख-सुख भूल रहे॥ 43॥

संकटदा विषकंटक कीटों कंकर तिनकों शूलों से।
रहित बनाता पथ को गुरुतर उपलों से अतिधूलों से॥
योजन तक भूतल को समतल करता बहता वह साता।
मन्द-मन्द मकरन्द गन्ध से पवन मही को महकाता॥ 44॥

तुरत इन्द्र की आज्ञा से बस नभ मण्डल में छा जाते।
सघन मेघ के कुमार गर्जन करते बिजली चमकाते॥
रिम-झिम रिम-झिम गन्धोदक की वर्षा होती हर्षाती।
जिस सौरभ से सब की नासा सुर-सुर करती दर्शाती॥ 45॥

आगे पीछे सात-सात इक पदतल में तीर्थङ्कर के।
पंक्तिबद्ध यों अष्टदिशाओं और उन्हीं के अन्तर में॥
पद्म बिछाते सुर माणिक-सम केशर से जो भरे हुए।
अतुल परस है सुखकर जिनका स्वर्ण दलों से खिले हुए॥ 46॥

पकी फसल ले शाली आदिक धरती पर सर धरती है।
सुन लो फलतः रोम-रोम से रोमाञ्चित सी धरती है॥

ऐसी लगती त्रिभुवनपति के वैभव को ही निरख रही।
और स्वयं को भाग्यशालिनी कहती-कहती हरख रही॥ 47॥

शरदकाल में विमल सलिल से सरवर जिस विध लसता है।
बादल-दल से रहित हुआ नभमण्डल उस विध हँसता है॥
दशों दिशायें धूम्र-धूलियाँ शाम भाव को तजती हैं।
सहज रूप से निरावरणता उज्ज्वलता को भजती हैं॥ 48॥

इन्द्राज्ञा में चलने वाले देव चतुर्विध वे सारे।
भविक जनों को सदा बुलाते समवशरण में उजियारे॥
उच्चस्वरों में दे दे करके आमन्त्रण की ध्वनि ओ जी!
देवों के भी देव यहाँ हैं शीघ्र पधारो आओ जी!॥ 49॥

जिसने धारे हजार आरे स्फुरणशील मन हरता है।
उज्ज्वल मौलिक मणि-किरणों से झर-झुर झर-झुर करता है॥
जिसके आगे तेज भानु भी अपनी आभा खोता है।
आगे - आगे सबसे आगे धर्मचक्र वह होता है॥ 50॥

वैभवशाली होकर भी ये इन्द्र लोग सब सीधे हैं।
धर्म राग से रंगे हुए हैं भाव भक्ति में भीगे हैं॥
इन्हीं जनों से इस विध अनुपम अतिशय चौदह किए गए।
वसुविध मंगल पात्रादिक भी समवसरण में लिए गए॥ 51॥

नील-नील वैडूर्य दीप्ति से जिसकी शाखायें भाती।
लाल-लाल मद प्रवाल आभा जिनमें शोभा औ लाती॥
मरकत मणि के पत्र बने हैं जिसकी छाया शाम घनी।
अशोक तरु यह अहो शोभता यहाँ शोक की शाम नहीं॥ 52॥

पुष्पवृष्टि हो नभ से जिसमें पुष्प अलौकिक विपुल मिले।
नील-कमल हैं लाल-धवल हैं कुन्द बहुल हैं बकुल खुले॥
गन्धदार मन्दार मालती पारिजात मकरन्द झरे।
जिन पर अलिगण गुन-गुन गाते निशिगन्धा अरविन्द खिले॥ 53॥

जिनकी कटि में कनक करधनी कलाइयों में कनक कड़े।
हीरक के केयूर हार हैं पुष्प कण्ठ में दमक पड़े॥
सालंकृत दो यक्ष खड़े जिन-कर्णों में कुण्डल डोलें।
चमर ढुराते हौले-हौले प्रभु की जो जय-जय बोलें॥ 54॥

यहाँ यकायक घटित हुआ जो कोई सकता बता नहीं।
दिवस रात का भला भेद वह कहाँ गया कुछ पता नहीं॥
दूर हुए व्यवधान हजारों रवियों के वह आप कहीं।
भामण्डल की यह सब महिमा आँखों को कुछ ताप नहीं॥ 55॥

प्रबल पवन का घात हुआ जो विचलित होकर तुरत मथा।
हर-हर-हर-हर सागर करता हर मन हरता मुदित यथा॥
वीणा मुरली दुम-दुम दुंदुभि ताल-ताल करताल तथा।
कोटि कोटियों वाद्य बज रहे समवशरण में सार कथा॥ 56॥

महादीर्घ वैडूर्य रत्न का बना दण्ड है जिस पर हैं।
तीन चन्द्र-सम तीन छत्र ये गुरु-लघु-लघुतम ऊपर हैं॥
तीन भुवन के स्वामीपन की स्थिति जिससे अति प्रकट रही।
सुन्दरतम हैं मुक्ताफल की लड़ियाँ जिस पर लटक रहीं॥ 57॥

जिनवर की गम्भीर भारती श्रोताओं के दिल हरती।
योजन तक जो सुनी जा रही अनुगुंजित हो नभ धरती॥
जैसे जल से भरे मेघदल नभ-मण्डल में डोल रहे।
ध्वनि में डूबे दिगन्तरों में घुमड़-घुमड़ कर बोल रहे॥ 58॥

रंग-बिरंगी मणि-किरणों से इन्द्रधनुष की सुषमा ले।
शोभित होता अनुपम जिस पर ईश विराजे गरिमा ले॥
सिंहों में वर बहु सिंहों ने निजी पीठ पर लिया जिसे।
स्फटिक शिला का बना हुआ है सिंहासन है जिया! लसे॥ 59॥

अतिशय गुण चउतीस रहें ये जिस जीवन में प्राप्त हुए।
प्रातिहार्य का वसुविध वैभव जिन्हें प्राप्त हैं आप्त हुए॥
त्रिभुवन के वे परमेश्वर हैं महागुणी भगवन्त रहे।
नमूँ उन्हें अरहन्त सन्त हैं सदा-सदा जयवन्त रहें॥ 60॥

अञ्चलिका

दोहा

नन्दीश्वर वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

नन्दीश्वर के चउ दिशियों में चउ गुरु अंजन गिरिवर हैं।
इक-इक अंजनगिरि सम्बन्धित चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं॥
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर गिरि चर्चित हैं।
पावन बावनगिरि पर बावन जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं॥ 2॥
देव चतुर्विध कुटुम्ब ले सब इसी द्वीप में हैं आते।
कार्तिक फागुन आषाढ़ों के अन्तिम वसु-दिन जब आते॥
शाश्वत जिनगृह जिनबिम्बों से मोहित होते बस तातैं।
तीनों अष्टाह्निक पर्वों में, यहीं आठ दिन बस जाते॥ 3॥
दिव्य गन्ध ले, दिव्य दीप ले, दिव्य-दिव्य ले सुमन तथा।
दिव्य चूर्ण ले, दिव्य न्हवन ले, दिव्य-दिव्य ले वसन तथा॥
अर्चन, पूजन, वन्दन करते, नियमित करते नमन सभी।
नन्दीश्वर का पर्व मनाकर करते निजघर गमन सभी॥ 4॥
मैं भी उन सब जिनालयों का भरतखण्ड में रहकर भी।
अर्चन पूजन वन्दन करता प्रणाम करता झुककर ही॥
कष्ट दूर हो, कर्मचूर हो, बोधिलाभ हो, सद्गति हो।
वीर मरण हो, जिनपद मुझको मिले, सामने सन्मति ओ!॥ 5॥

चैत्यभक्ति

अजेय अघहर अद्भुत-अद्भुत पुण्य बन्ध के कारक हैं।
करें उजाला पूर्ण जगत् में, सत्य तथ्य भव तारक हैं॥
गौतम-पद को, सन्मति-पद को, प्रणाम करके कहता हूँ।
'चैत्य-वन्दना' जग का हित हो जग के हित में रहता हूँ॥ 1॥

अमर मुकुटगत मणि आभा जिन को सहलाती सन्त कहे।
कनक कमल पर चरण कमल को रखते जो जयवन्त रहे॥
जिनकी छाया में आकर के उदार उर वाले बनते।
अदय क्रूर उर धारे आरे मान दम्भ से जो तनते॥ 2॥

जैनधर्म जयशील रहे नित सुर-सुख शिव-सुख का दाता।
दुर्गति दुष्पथ दुःखों से जो हमें बचाता है त्राता॥
प्रमाणपन औ विवध नयों से दोषों के जो वारक हों।
अंग-बाह्य औ अंग-पूर्वमय जिनवच जग उद्धारक हों॥ 3॥

अनेकान्तमय वस्तु तत्त्व का सप्तभंग से कथन करे।
तथा दिखाता सदा द्रव्य को ध्रौव्य-आय-व्यय वतन अरे॥
पूर्णबोध की इस विध थुति से निरुपम सुख का द्वार खुले।
दोष रहित औ नित्य निरापद संपद का भण्डार मिले॥ 4॥

जन्म-दुःख से मुक्त हुए हैं अरहन्तों को वन्दन हो।
सिद्धों को भी नमन करूँ मैं जहाँ कर्म की गन्ध न हो॥
गणी पाठकों को वन्दूँ मैं साधुजनों को नमन करूँ।
सदा वन्द्य हैं सर्ववन्द्य हैं मोक्ष-धाम को गमन करूँ॥ 5॥

मोह-शत्रु को नष्ट किए हैं दोष-कोष से रहित हुए।
तदावरण से दूर हुए हैं प्रबोध-दर्शन सहित हुए॥
अनन्त बल के धनी हुये हैं अन्तराय का नाम नहीं।
पूज्य योग्य अरहन्त बने हैं तुम्हें नमूँ वसु याम सही॥ 6॥

वीतरागमय धर्म कहा है जिनवर ने शिवपथ नेता।
साधक को जो सदा संभाले मोक्षधाम में धर देता॥
नमूँ उसे मैं तीन लोक के हित सम्पादक और नहीं।
आर्जव आदिक गुणगण जिससे बढ़ते उन्नति ओर सही॥ 7॥

सजे चतुर्दश पूर्वों से हैं औ द्वादश विध अंगों से।
तथा वस्तुओं और उपांगों से गुंथित बहु भंगों से॥
अजेय जिनके वचन रहे ये अनन्त अवगम वाले हैं।
इन्हें नमन अज्ञान-तिमिर को हरते परम उजाले हैं॥ 8॥

भवनवासियों के भवनों में स्वर्गिक कल्प विमानों में।
व्यन्तर देवावासों में औ ज्योतिष देव विमानों में॥

विश्ववन्द्य औ मर्त्यलोक में जितने जिनवर चैत्य रहे।
मन-वच-तन से उन्हें नमूँ वे मम मन के नैवेद्य रहे॥ 9॥

सुरपति नरपति धरणेन्द्रों से तीन लोक में अर्चित हैं।
अनन्य दुर्लभ सभी सम्पदा जिन चरणों में अर्पित हैं॥
तीर्थंकरों के जिनालयों को तन-वच-मन-परिणामों से।
नमूँ, बनूँ बस शान्त, बचूँ मैं भव-भवगत दुःख-अनलों से॥ 10॥

इस विध जिनको नमन किया है पावनगण को हैं धारे।
पञ्चपदों से पूजे जाते परम पुरुष हैं जग प्यारे॥
जिनवर जिनके वचन धर्म औ बिम्ब जिनालय ये सारे।
बुधजन तरसे विमल-बोधि को हमें दिलावे शिव-द्वारे॥ 11॥

नहीं किसी से गए बनाये स्वयं बने हैं शाश्वत हैं।
चम-चम चमके दम-दम दमके बाल-भानुसम भास्वत हैं॥
और बनाये जिनालयों में नरों सुरों से पूजित हैं।
जिनबिम्बों को नमन करूँ मैं परम पुण्य से पूरित हैं॥ 12॥

आभामय भामण्डल वाली सुडौल हैं बेजोड़ रहीं।
जिनोत्तमों में उत्तम जिन की प्रतिमायें युग मोड़ रहीं॥
विपदा हरती वैभव लाती सुभिक्ष करती त्रिभुवन में।
कर युग जोड़ूँ विनम्र तन से नमूँ उन्हें हरखूँ मन में॥ 13॥

आभरणों से आवरणों से आभूषण से रहित रही।
हस्त निरायुध, उपांग जिनके विराग छवि से सहित सही॥
प्रतिमाएँ अ-प्रमित रही हैं, कान्ति अनूठी है जिनकी।
क्लान्ति मिटे चिर शान्ति मिले बस भक्ति करूँ निशिदिन उनकी॥ 14॥

बाहर का यह रूप जिनों का स्वरूप क्या है? बता रहा।
कषाय कालिख निकल गई है परम शान्ति को जता रहा॥
स्वभाव-दर्शक भव-भवनाशक जिनबिम्बों को नमन करूँ।
साधन से सो साध्य सिद्ध हो कषाय-मल का शमन करूँ॥ 15॥

लगा भक्ति में जिन बिम्बों की हुआ पुण्य का अर्जन है।
सहज रूप से अनायास ही हुआ पाप का तर्जन है॥
किए पुण्य के फल ना चाहूँ विषय नहीं सुरगात्र नहीं।
जन्म-जन्म में जैनधर्म जिन मिले भावना मात्र यही॥ 16॥

सब कुछ देखे सब कुछ जाने दर्शनधारी ज्ञानधनी।
गुणियों में अरहन्त कहाते चेतन के द्युतिमान मणी॥
मिली बुद्धि से उन चैत्यों का भाग्य मान गुणगान करूँ।
अशुद्धियों को शीघ्र मिटाकर विशुद्धियों का पान करूँ॥ 17॥

भवनवासियों के भवनों में फैली वैभव की महिमा।
नहीं बनाई, बनी आप हैं आभावाली हैं प्रतिमा॥

प्रणाम उनको भी मैं करता सादर सविनय सारों से।
पहुँचा देवें पञ्चमगति को तारें मुझको क्षारों से॥ 18॥

यहाँ लोक में विद्यमान हैं जितने अपने आप बने।
और बनाये चैत्य अनेकों भविक जनों के पाप हने॥
उन सब चैत्यों को वन्दूँ मैं बार-बार संयत मन से।
बार-बार ना एक बार बस आप भरूँ अक्षय धन से॥ 19॥

व्यन्तर देवों के यानों में प्रतिमा - गृह हैं भास्वर हैं।
संख्या की सीमा से बाहर चिर से हैं अविनश्वर हैं॥
सदा हमारे दोषों के तो वारण के वे कारण हो।
ताकि दिनों दिन उच्च-उच्चतर चारित का अवधारण हो॥ 20॥

ज्योतिष देव विमानों में भी रहे जिनालय हैं प्यारे।
कितनी संख्या कहीं न जाती अनगिन माने हैं सारे॥
विस्मयकारी वैभव से जो भरे हुए हैं अघहारी।
उनको भी हो वन्दन अपना, वन्दन हो शिव सुखकारी॥ 21॥

वैमानिक देवों के यानों में भी जिन की प्रतिमा हैं।
जिन की महिमा कही न जाती चम-चम-चमकी द्युतिमा हैं॥
सुरमुकुटों की मणि छवियाँ वे जिनके पद में बिम्बित हैं।
उन्हें नमूँ मैं सिद्धि लाभ हो गुणगण से जो गुम्फित हैं॥ 22॥

उभय सम्पदा वाले जिनका वर्णों से ना वर्णन हो।
अरि-विरहित अरहंत कहाते जिनबिम्बों का अर्चन हो॥
यश:कीर्ति की नहीं कामना कीर्तन जिन का किया करूँ।
कर्मास्त्रव का रोकनहारा कीर्तन करता जिया करूँ॥ 23॥

महानदी अरहन्त देव हैं अनेकान्त भागीरथ है।
भविकजनों का अघ धुलता है, यहाँ यही वर तीरथ है॥
और तीर्थ में लौकिक जो है, तन की गरमी है मिटती।
वही तीर्थ परमार्थ जहाँ पर मन की भी गरमी मिटती॥ 24॥

लोकालोका-लोकित करता दिव्यबोध आलोक रहा।
प्रवाह बहता अहोरात यह कहीं रोक, ना टोक रहा॥
जिसके दोनों ओर बड़े दो विशाल निर्मल कूल रहे।
एक शील का दूजा व्रत का आपस में अनुकूल रहे॥ 25॥

धर्म - शुक्ल के ध्यान धरे हैं राजहंस ऋषि चेत रहे।
पञ्च समितियाँ तीन गुप्तियाँ नाना गुणमय रेत रहे॥
श्रुताभ्यास की अनन्य दुर्लभ मधुर-मधुर धुनि गहर रही।
महातीर्थ की मुझ बालक पर, रही रहे नित महर सही॥ 26॥

क्षमा भँवर है जहाँ हजारों यति-ऋषि-मुनि मन सहलाते।
दया कमल हैं, खुले खिले हैं सब जीवों को महकाते॥

तरह-तरह के दुस्सह परिषह लहर-लहर कर लहराते।
ज्ञानोदय के छन्द हमें यों ठहर-ठहर कर कह पाते॥ 27॥

भविक व्रती जन नहीं फिसलते राग-रोष शैवाल नहीं।
सार-रहित हैं कषाय तन्मय फेनों का फैलाव नहीं॥
तथा यहाँ पर मोहमयी उस कर्दम का तो नाम नहीं।
महा भयावह दुस्सह दुःख का मरण-मगर का काम नहीं॥ 28॥

ऋषि-पति मृदुधुनि से थुति करते श्रुत की भी दे सबक रहे।
जहाँ लग रहा श्रवण मनोहर विविध विहंगम चहक रहे॥
घोर-घोरतर तप तपते हैं बने तपस्वी घाट रहे।
आस्रव रोधक संवर बनता बँधा झर रहा पाट रहे॥ 29॥

गणधर, गणधर के चरणों में ऋषि-यति-मुनि अनगार रहे।
सुरपति नरपति और-और जो निकट भव्यपन धार रहे॥
ये सब आकर परम-भक्ति से परम तीर्थ में स्नान किए।
पञ्चम युग के कलुषित मन को धो-धोकर छविमान किए॥ 30॥

नहीं किसी से जीता जाता अजेय है गम्भीर रहा।
पतितों को जो पूत बनाता परमपूत है क्षीर रहा॥
अवगाहन करने आया हूँ महातीर्थ में स्नान करूँ।
मेरा भी सब पाप धुले बस यही प्रार्थना दान करूँ॥ 31॥

नयन युगल क्यों लाल नहीं हैं? कोप अनल को जीत लिया।
हाव-भाव से नहीं देखते, राग आप में रीत गया॥
विषाद-मद से दूर हुए हैं, प्रसन्नता का उदय रहा।
यूँ तव मुख कहता-सा लगता दर्पण-सम है हृदय रहा॥ 32॥

निराभरण होकर भासुर है राग-रहित हैं अघहर हैं।
कामजयी बन, यथाजात बन बने दिगम्बर मनहर हैं॥
निर्भय हैं सो बने निरायुध मार-काट से मुक्त हुए।
क्षुधा-रोग का नाश हुआ है निराहार में तृप्त हुए॥ 33॥

अभी खिले हैं नीरज चन्दन-सम घम-घम-घम-वासित है।
दिनकर शशिकर हीरक आदिक शतवसु लक्षण भासित हैं॥
दश-शत रवि-सम भासुर फिर भी आँखें लखतीं ना थकती।
दिव्यबोध जब जिन में उगता देह दिव्यता यूँ जगती।
बाल बढ़े नाखून बढ़े ना मलिन धूलि आ ना लगती॥ 34॥

शिवपथ में हैं बाधक होते मोह-भाव हैं राग घने।
जिनसे कलुषित जन भी तुम को लखते वे बेदाग बने॥
किसी दिशा से जो भी देखे उसके सम्मुख तुम दिखते।
शरदचन्द्र-से शान्त धवलतम संत सुधी जन यूँ लिखते॥ 35॥

सुरपति मुकुटों की मणिकिरणें झर-झुर झर-झुर करती हैं।
पूज्यपाद के पदपद्मों को चूँम रही मन हरती हैं॥
वीतराग जिन! दिव्य रूप तव सकल लोक को शुद्ध करे।
अन्ध बना है कुमततीर्थ में शीघ्र इसे प्रतिबुद्ध करे॥ 36॥

मानथंभ सर पुष्पवाटिका भरी खातिका शुचि जल से।
स्तूप महल बहु कोट नाट्यगृह सजी वेदियाँ ध्वज-दल से॥
सुरतरु घेरे वन उपवन है और स्फटिक का कोट लसे।
नर सुर मुनि की सभा पीठिका पर जिनवर हैं और बसे।
समवसरण की ओर देखते पाप ताप का घोर नसे॥ 37॥

क्षेत्र-पर्वतों के अन्तर में क्षेत्रों मन्दरगिरियों में।
द्वीप आठवाँ नन्दीश्वर में और अन्य शुभ पुरियों में॥
सकल-लोक में जितने जिन के चैत्यालय हैं यहाँ लसे।
उन सबको मैं प्रणाम करता मम मन में वे सदा बसे॥ 38॥

बने बनाये बिना बनाये यहाँ धरा पर गिरियों में।
देवों राजाओं से अर्चित मानव निर्मित पुरियों में॥
वन में उपवन में, भवनों में, दिव्य विमानों यानों में।
जिनवर बिम्बों को मैं सुमरूँ अशुभ दिनों में सुदिनों में॥ 39॥

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध में लाल कमल-सम तन वाले।
कृष्ण मेघ-सम शशी कनक-सम नील कण्ठ आभा वाले॥
साम्य-बोध चारितधारक हो अष्टकर्म को नष्ट किया।
विगत-अनागत-आगत जिन को नमूँ नष्ट हो कष्ट जिया॥ 40॥

रतिकर रुचके चैत्य वृक्ष पर औ दधिमुख अञ्जन भूधर-
रजत कुलाचल कनकाचल पर वृक्ष शाल्मली-जम्बू पर॥
इष्वाकारों वक्षारों पर व्यन्तर-ज्योतिष सुर जग में।
कुण्डल मानुषगिरि पर-प्रतिमा नमूँ उन्हें अन्तर जग में॥ 41॥

सुरासुरों से नर नागों से पूजित वंदित अर्चित हैं।
घंटा तोरण ध्वजादिकों से शोभित बुधजन चर्चित हैं॥
भविक जनों को मोहित करते पाप-ताप के नाशक हैं।
वन्दूँ जग के जिनालयों को दयाधर्म के शासक हैं॥ 42॥

अञ्चलिका

दोहा

पूज्य चैत्य सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

अधोलोक में ऊर्ध्वलोक में मध्यलोक में उजियारे।
बने बनाये हैं बनवाये चैत्य रहे अनगिन प्यारे॥
देव चतुर्विध अपने-अपने उत्साहित परिवार लिए।
पर्वों विशेष तिथियों में औ प्रतिदिन शुभ शृंगार किए॥ 2॥

दिव्यगन्ध ले दिव्य दीप ले दिव्य दिव्य ले सुमनलता।
दिव्य चूर्ण ले दिव्य न्हवन ले दिव्य दिव्य ले वसन तथा॥
अर्चन पूजन वन्दन करते सविनय करते नमन सभी।
भाग्य मानते पुण्य लूटते बने पाप का शमन तभी॥ 3॥

मैं भी उन सब जिन चैत्यों को भरतखण्ड में रहकर भी।
पूजूँ वन्दूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ सर झुककर ही॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ॥ 4॥

❑❑❑

समय व स्थान परिचय

गगन चूमता शिखर है भव्य जिनालय भ्रात।
विघन-हरण मंगलकरण महुवा में विख्यात॥ 1॥

बहती कहती है नदी 'पूर्णा' जिसके तीर।
पार्श्वनाथ के दर्श से दिखता भव का तीर॥ 2॥

गन्ध गन्ध गति गन्ध की सुगन्ध दशमी योग।
अनुवादित ये भक्तियाँ पढ़ो मिटे सब रोग॥ 3॥

पूर्णा नदी के तट पर अवस्थित श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ की मनोहारी प्रतिमा के लिए सुप्रसिद्ध श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुवा (सूरत) गुजरात में वर्षायोग के दौरान भाद्रपद शुक्ल, सुगन्ध दशमी, वीर निर्वाण संवत् 2522 तदनुसार 22 सितम्बर, 1996 को भक्तियों का यह पद्यानुवाद सम्पन्न हुआ।

❑❑❑

आचार्य कुन्दकुन्द रचित
प्राकृत भक्तियाँ

तीर्थंकर भक्ति

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥ 1॥
लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो॥ 2॥
उसह-मजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे॥ 3॥
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि॥ 4॥
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च॥ 5॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु॥ 6॥
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं॥ 7॥
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायर-मिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु॥ 8॥

अंचालिका

इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयर-भत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय-विसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंद-मणिमउड-मत्थयमहिदाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोवगूढाणं थुइसहस्सणिलयाणं उसहाइ वीर पच्छिम मंगल महापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ

जो कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ हैं, केवलज्ञान से युक्त हैं, अनंत संसार को जीतने वाले हैं, लोकश्रेष्ठ चक्रवर्ती आदि जिनकी पूजा करते हैं, जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण नामक रज रूपी मल को दूर कर दिया है तथा महाप्राज्ञ-उत्कृष्ट ज्ञानवान् हैं, ऐसे तीर्थंकरों की स्तुति करूँगा॥ 1॥

मैं लोक को प्रकाशित करने वाले तथा धर्मरूपी तीर्थ के कर्ता जिनों को नमस्कार करता हूँ और अरहंत पद को प्राप्त केवलज्ञानी चौबीस तीर्थंकरों का कीर्तन करूँगा॥ 2॥

मैं ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन और सुमति जिनेन्द्र की वन्दना करता हूँ, इसी प्रकार पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ भगवान् को नमस्कार करता हूँ॥ 3॥

मैं सुविधि अथवा पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म और शान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ॥ 4 ॥

मैं कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ॥ 5 ॥

इस प्रकार मेरे द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, जिन्होंने आवरण रूपी मल को नष्ट कर दिया है, जिनके जरा और मरण नष्ट हो गए हैं तथा जो जिनों में श्रेष्ठ हैं, ऐसे चौबीस तीर्थंकर मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥ 6 ॥

जो मेरे द्वारा कीर्तित, वंदित और पूजित हैं, लोक में उत्तम हैं तथा कृतकृत्य हैं, ऐसे ये जिनेन्द्र चौबीस भगवान् मेरे लिए आरोग्यलाभ, ज्ञानलाभ, समाधि और बोधि प्रदान करें॥ 7 ॥

जो चन्द्रों से अधिक निर्मल हैं, सूर्यों से अधिक प्रभासमान हैं, समुद्र समान गंभीर हैं तथा सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, ऐसे चौबीस जिनेन्द्र मेरे लिए सिद्धि प्रदान करें॥ 8 ॥

हे भगवन् ! जो मैंने चौबीस तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो पाँच कल्याणकों से सम्पन्न हैं, आठ महाप्रातिहार्यों से सहित हैं, चौंतीस अतिशय विशेषों से सहित हैं, बत्तीस इन्द्रों के मणिमय मुकुटों से युक्त मस्तकों से जिनकी पूजा होती है, बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती,

ऋषि, मुनि, यति और अनगार (इन चारों प्रकार के मुनियों) से जो परिवृत हैं तथा हजारों स्तुतियों के जो घर हैं, ऐसे ऋषभादि महावीरपर्यन्त के मंगलमय महापुरुषों की मैं निरन्तर अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ। उसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

❑❑❑

सिद्धभक्ति

अट्ठविह-कम्ममुक्के, अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठमपुढवि-णिविट्ठे,णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं ॥1 ॥
तित्थयरेदरसिद्धे, जलथलआयास-णिव्वुदे सिद्धे।
अंतयडेदरसिद्धे, उक्कस्सजहण्ण-मज्झियोगाहे ॥2 ॥
उड्ढमहतिरियलोए, छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे।
उवसग्गणिरुव-सग्गे,दीवोदहि-णिव्वुदे य वंदामि ॥3 ॥
पच्छायडेय सिद्धे, दुग्गतिगचदुणाण पंचचदुरजमे।
परिपडिदा परिपडिदे, संजमसम्मत्तणाण-मादीहिं ॥4 ॥
साहरणासाहरणे, समुग्घादेदरे य णिव्वादे।
ठिद पलियंक णिसण्णो, विगयमले परमणाणगे वंदे ॥5 ॥

पुंवेदं वेदंता, जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा, झाणुवजुत्ता य ते हु सिज्झंति ॥6 ॥
पत्तेयसयंबुद्धा, बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा।
पत्तेयं पत्तेयं, समयं समयं पडिवदामि सदा ॥7 ॥
पण णव दु अट्ठवीसा, चउ तियणवदि य दोण्णि पंचेव।
वावण्णहीणविसया, पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥8 ॥
अइसयमव्वाबाहं, सोक्खमणंतं अणोवमं परमं।
इंदियविसयातीदं, अप्पत्तं अच्चयं च ते पत्ता ॥9 ॥
लोगग्गमत्थयत्था, चरमसरीरेण ते हु किञ्चूणा।
गयसित्थमूसगब्भे, जारिस आयार तारिसायारा ॥10 ॥
जरमरणजम्मरहिया, ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स।
दिंतु वरणाणलाहं, बुहयण परियत्थणं परमसुद्धं ॥11 ॥
किच्चा काउस्सग्गं, चतुरट्ठय-दोषविरहियं सुपरिसुद्धं।
अइभत्तिसंपउत्तो, जो वंदइ लहु लहइ परमसुहं ॥12 ॥

अंचलिका

इच्छामिभंते! सिद्धभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं संजम-सिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाणकालत्तय-

सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

जो आठ प्रकार के कर्मों से मुक्त हैं, जो आठ गुणों से सम्पन्न हैं, अनुपम हैं, अष्टम पृथ्वी में स्थित हैं तथा अपने समस्त कार्य को जिन्होंने समाप्त किया है, ऐसे सिद्धों को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ॥ 1॥

जो तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए हैं, जो तीर्थंकर न होकर सिद्ध हुए हैं, जो जल से, स्थल से अथवा आकाश से निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, जो अंतकृत् होकर सिद्ध हुए हैं, जो अंतकृत् न होकर सिद्ध हुए हैं, जो उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम अवगाहना से सिद्ध हुए हैं, जो ऊर्ध्वलोक, अधोलोक व तिर्यग्लोक से सिद्ध हुए हैं, जो छह प्रकार के कालों में निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, जो उपसर्ग सहकर अथवा बिना उपसर्ग के सिद्ध हुए हैं तथा जो द्वीप अथवा समुद्र से निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, ऐसे समस्त सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 2-3॥

जिन्होंने दो, तीन अथवा चार ज्ञानों के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धपद प्राप्त किया है, जिन्होंने पाँचों अथवा परिहार-विशुद्धि से रहित शेष चार संयमों से सिद्ध पद प्राप्त किया है, जो संयम, सम्यक्त्व तथा ज्ञान आदि के द्वारा पतित होकर अथवा बिना पतित हुए सिद्ध हुए हैं, जो संहरण से अथवा संहरण के बिना ही सिद्ध हुए हैं अथवा उपसर्गवश साभरण अथवा निराभरण

सिद्ध हुए, जो समुद्घात से अथवा समुद्घात के बिना निर्वाण को प्राप्त हुए, जो खड्गासन अथवा पर्यंकासन से बैठकर सिद्ध हुए हैं, जिन्होंने कर्म-मल को नष्ट कर दिया है और जो उत्कृष्ट केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, ऐसे समस्त सिद्धों को नमस्कार करता हूँ॥ 4-5॥

जो पुरुष भावपुरुष वेद का अनुभव करते हुए क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए अथवा भावस्त्री अथवा भावनपुंसक वेद के उदय से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए वे शुक्लध्यान में तल्लीन होते हुए सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं॥ 6॥

जो प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध अथवा बोधितबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं, उन सबको पृथक्-पृथक् अथवा एक साथ मैं सदा नमस्कार करता हूँ॥ 7॥

भावार्थ : जो वैराग्य का कोई कारण देखकर विरक्त होते हैं, वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं। जो किसी कारण के बिना देखे ही स्वयं विरक्त होते हैं, वे स्वयंबुद्ध कहलाते हैं और भोगों में आसक्त रहने वाले जो मनुष्य दूसरों के द्वारा समझाए जाने पर विरक्त होते हैं, वे बोधितबुद्ध कहलाते हैं।

पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवे, दो और पाँच इस प्रकार क्रम से ज्ञानावरणादि कर्मों की बावन कम दो सौ अर्थात् एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों के क्षय से वे सिद्ध होते हैं॥ 8॥

वे सिद्ध भगवान् अतिशय, अव्याबाध, अनन्त, अनुपम, उत्कृष्ट, इन्द्रिय विषयों से अतीत, अप्राप्त अर्थात् जो पहले कभी

प्राप्त नहीं हुआ था तथा स्थायी सुख को प्राप्त हुए हैं ॥ 9 ॥

वे सिद्ध भगवान् लोकाग्र के मस्तक पर विराजमान हैं, चरम शरीर से किंचित् न्यून हैं तथा जिसके भीतर का मोम गल गया है साँचे के भीतरी भाग का जैसा आकार होता है, वैसे आकार से युक्त हैं ॥ 10 ॥

जरा, मरण और जन्म से रहित वे सिद्ध भगवान् समीचीन भक्ति युक्त मुझ कुन्दकुन्द को बुधजनों के द्वारा प्रार्थित तथा परम शुद्ध उत्कृष्ट ज्ञान का लाभ दें ॥ 11 ॥

जो बत्तीस दोषों से रहित, अत्यन्त शुद्ध कायोत्सर्ग करके अतिशय भक्ति से युक्त होता हुआ वंदना करता है, वह शीघ्र ही परम सुख को प्राप्त होता है ॥ 12 ॥

हे भगवन्! मैंने जो सिद्धभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र युक्त हैं, आठ प्रकार के कर्मों से सर्वथा रहित हैं, आठ गुणों से सहित हैं, ऊर्ध्वलोक के अग्रभाग पर स्थित हैं, नय से सिद्ध हैं, संयम से सिद्ध हैं, चारित्र से सिद्ध हैं, अतीत, अनागत और वर्तमानकाल सम्बन्धी सिद्ध हैं, ऐसे समस्त सिद्धों की मैं नित्य काल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

श्रुतभक्ति

सिद्धवरसासणाणं, सिद्धाणं कम्मचक्क-मुक्काणं।
काऊण णमुक्कारं, भत्तीए णमामि अंगाइं ॥1॥

अंगों के नाम

आयारं सुद्दयडं, ठाणं समवाय वियाहपण्णत्ती।
णादा धम्मकहाओ, उवासयाणं च अज्झयणं॥ 2॥
वंदे अंतयडदसं, अणुत्तरदसं च पण्हवायरणं।
एयारसमं च तहा, विवायसुत्तं णमंसामि॥ 3॥
परियम्मसुत्त-पढमाणुओग-पुव्वगयचूलिया चेव।
पवरवरदिट्ठिवादं, तं पंचविहं पणिवदामि।॥ 4॥
उप्पायपुव्व-अग्गायणीय वीरियत्थि णत्थि य पवादं।
णाणासच्चपवादं, आदा कम्मपवादं च॥ 5॥
पच्चक्खाणं विज्जाणुवाद-कल्लाणणा-मवरपुव्वं।
पाणावायं किरिया-विसालमध लोयबिन्दुसारसुदं॥6॥

पूर्वों में वस्तुनामक अधिकारों की संख्या

दस चउदस अट्ठट्ठारस, बारस तह य दोसु पुव्वेसु।
सोलस वीसं तीसं, दसमम्मि य पण्णरसवत्थू॥ 7॥
एदेसिं पुव्वाणं, जावदिओ वत्थुसंगहो भणिओ।
सेसाणं पुव्वाणं, दस दस वत्थू पडिवदामि॥ 8॥

वस्तु में प्राभृतों की संख्या

एक्केक्कम्मि य वत्थू, वीसं वीसं च पाहुडा भणिया।
विसमसमावि य वत्थू, सव्वे पुण पाहुडेवि समा॥ 9॥

चौदह पूर्वों में वस्तुओं और प्राभृतों की संख्या

पुव्वाणं वत्थुसयं, पंचाणउदी हवंति वत्थूओ।
पाहुड तिण्णि सहस्सा णवयसया चउदसाणं पि॥ 10॥
एवं मए सुदपवरा, भत्तीराएण सत्थुया तच्चा।
सिग्घं मे सुदलाहं, जिणवरवसहा पयच्छंतु॥ 11॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंग-पइण्णए पाहुड परियम्म सुत्त पढमाणुओग पुव्वगय चूलिया चेव सुत्तत्थवथुइ धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

जिनका उत्कृष्ट शासन लोक में प्रसिद्ध है तथा जो कर्मों के चक्र से मुक्त हो चुके हैं, ऐसे सिद्धों को नमस्कार कर मैं भक्तिपूर्वक बारह अंगों को नमस्कार करता हूँ॥ 1॥

आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अंतःकृद्दश, अनुत्तरोपपाददश,

प्रश्नव्याकरण तथा ग्यारहवें विपाकसूत्र अंग को नमस्कार करता हूँ।

परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका ये पाँच दृष्टिवाद अंग के भेद हैं। मैं उक्त पाँच प्रकार के उत्कृष्ट दृष्टिवाद अंग को नमस्कार करता हूँ।

उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणनामपूर्व, प्राणावाद, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार ये चौदह पूर्व हैं॥ 2-6॥

पहले पूर्व में दस, दूसरे पूर्व में चौदह, तीसरे पूर्व में आठ, चौथे पूर्व में अठारह, पाँचवें और छठवें इन दो पूर्वों में बारह-बारह, सातवें पूर्व में सोलह, आठवें पूर्व में बीस, नौवें पूर्व में तीस, दसवें पूर्व में पन्द्रह और शेष चार पूर्वों में दस-दस वस्तु नामक अधिकार हैं। इन पूर्वों में जितने वस्तु अधिकारों का संग्रह किया गया है, मैं उन सबको नमस्कार करता हूँ॥ 7-8॥

एक एक वस्तु नामक अधिकार में बीस-बीस पाहुड कहे गए हैं। वस्तु अधिकार तो विषम और सम दोनों प्रकार के हैं। जैसे किसी में चौदह, किसी में अठारह और किन्हीं में बारह-बारह आदि। परन्तु प्राभृतों की अपेक्षा सब वस्तु अधिकार समान हैं अर्थात् सब वस्तु अधिकार में प्राभृतों की संख्या एक समान

बीस-बीस हैं ॥ 9 ॥

चौदह पूर्वों के एक सौ पंचानवे वस्तु अधिकार होते हैं और पाहुड तीन हजार नौ सौ होते हैं ॥ 10 ॥

इस प्रकार मैंने भक्ति के राग से द्वादशांग रूप श्रेष्ठ श्रुत का स्तवन किया। जिनवर वृषभदेव मुझे शीघ्र ही श्रुत का लाभ देवें ॥ 11 ॥

हे भगवन्! मैंने जो श्रुतभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। अंग, उपांग, प्रकीर्णक, प्राभृत, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका तथा सूत्र, स्तव, स्तुति तथा धर्मकथा आदि की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

❑❑❑

चारित्र भक्ति

तिलोय सव्वजीवाणं, हिदं धम्मोवदेसिणं।
वड्ढमाणं महावीरं, वंदित्ता सव्ववेदिणं ॥1 ॥
घादिकम्मविघादत्थं,घादिकम्म-विणासिणा।
भासियं सव्वजीवाणं चारित्तं पंचभेददो ॥ 2 ॥

पाँच प्रकार का चारित्र

सामाइयं तु चारित्तं, छेदोवट्ठावणं तहा।
तं परिहारविसुद्धिं च, संजमं सुहुमं पुणो ॥ 3 ॥
जहाखादं तु चारित्तं, तहाखादं तु तं पुणो।
किच्चाहं पंचहाहारं, मंगलं मलसोहणं ॥ 4 ॥

मुनियों के मूलगुण तथा उत्तरगुण

अहिंसादीणि उत्ताणि, महव्वयाणि पंच य।
समिदीओ तदो पंच, पंच इंदियणिग्गहो ॥ 5 ॥
छब्भेयावास भूसिज्जा, अण्हाणत्तमचेलदा।
लोयत्ति ठिदिभुत्तिं च, अदंतधावणमेव च ॥ 6 ॥
एयभत्तेण संजुत्ता, रिसिमूलगुणा तहा।
दसधम्मा तिगुत्तीओ, सीलाणि सयलाणि च ॥ 7 ॥
सव्वेवि य परीसहा, उत्तुत्तरगुणा तहा।
अण्णो वि भासिया संता, तेसिं हाणि मए कया ॥ 8 ॥

जइ राएण दोसेण, मोहेणाणादरेण वा।
वंदित्ता सव्वसिद्धाणं, संजदा वा मुमुक्खुणा॥ 9॥
संजदेण मए सम्मं, सव्वसंजम-माविणा।
सव्वसंजम-सिद्धीओ, लब्भदे मुत्तिजं सुखं॥ 10॥

अंचलिका

इच्छामि भंते! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणुज्जोयस्स, सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्मणिज्जर-फलस्स, खमाहारस्स, पंचमहव्वय-संपुण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पंचसमिदि-जुत्तस्स, णाणज्झाण-साहणस्स, समयाइ-पवेसयस्स, सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

तीनों लोकों में समस्त जीवों का हित करने वाले, धर्मोपदेशक, सर्वज्ञ, वर्द्धमान महावीर को वंदना करके चारित्र भक्ति कहता हूँ। घातिया कर्म का विनाश करने वाले महावीर भगवान् ने घातिया कर्मों का विघात करने के लिए भव्य जीवों को पाँच प्रकार का चारित्र कहा है॥ 1-2॥

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात, यह पाँच प्रकार का चारित्र है। इनमें यथाख्यात को तथाख्यात भी कहते हैं। मैं मल का शोधन करने वाले और

मंगलस्वरूप पाँच प्रकार का चारित्र धारण कर मुक्ति सम्बन्धी सुख को प्राप्त करता हूँ॥ 3-4॥

अहिंसा आदि पाँच महाव्रत कहे गये हैं, पाँच समितियाँ, पाँच इन्द्रियों का निग्रह, छह आवश्यक, भूमिशयन, अस्नान, अचेलता-वस्त्ररहितपना, लोच करना, स्थितिभुक्ति(खड़े-खड़े आहार लेना), अदंतधावन और एकभक्त (एक बार भोजन करना), ये मुनियों के मूलगुण कहे गये हैं। दश धर्म, तीन गुप्तियाँ, समस्त प्रकार के शील और सब प्रकार के परीषह से उत्तर गुण कहे गये हैं। इनके सिवाय और भी उत्तर गुण कहे गये हैं। यदि उनका पालन करते हुए मैंने उनकी हानि की तो.॥ 5-8॥

यदि राग से, द्वेष से, मोह से अथवा अनादर से उक्त मूलगुणों अथवा उत्तरगुणों में हानि पहुँची हो तो सम्यक् रीति से सम्पूर्ण संयम का पालन करने वाले मुझ संयमी मुमुक्षु को, सब सिद्धों को नमस्कार कर उस हानि का परित्याग करना चाहिए, क्योंकि सकल संयम से मुक्ति सम्बन्धी सुख प्राप्त होता है॥ 9-11॥

हे भगवन्! मैंने जो चारित्रभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्ज्ञानरूप उद्योत (प्रकाश) से सहित है, सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित (युक्त) है, सब में प्रधान है, मोक्ष का मार्ग है, कर्मनिर्जरा ही जिसका फल है, क्षमा ही जिसका आधार है, जो पाँच महाव्रतों से परिपूर्ण है, तीन गुप्तियों से गुप्त (सुरक्षित) है, पाँच समितियों से सहित

है, ज्ञान और ध्यान का साधन है तथा आगम आदि में प्रवेश कराने वाला है, ऐसे सम्यक् चारित्र की मैं नित्य ही अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

❑❑❑

योगिभक्ति

थोस्सामि गुणधराणं, अणयाराणं गुणेहि तच्चेहिं।
अंजलिमउलि-यहत्थो, अभिवंदंतो सविभवेण ॥1॥
सम्मं चेव य भावे, मिच्छाभावे तहेव बोद्धव्वा।
चइऊण मिच्छभावे, सम्मामि उवट्ठिदे वंदे ॥2॥
दोदोस-विप्पमुक्के, तिदंडविरदे तिसल्ल-परिसुद्धे।
तिण्णिय-गारवरहिदे, तियरणसुद्धे णमंसामि ॥3॥
चउविहकसाय-महणे,चउगइसंसार-गमणभयभीए।
पंचासव-पडिविरदे, पंचिंदिय-णिज्जिदे वंदे ॥4॥
छज्जीवदयापण्णे,छडायदण-विवज्जिदे समिदभावे।
सत्तभय-विप्पमुक्के , सत्ताण-भयंकरे वंदे ॥5॥
णट्ठट्ठमयट्ठाणे, पणट्ठकम्मट्ठ-णट्ठसंसारे।
परमट्ठणिट्ठियट्ठे, अट्ठगुणड्ढीसरे वंदे ॥6॥

णव बंभचेरगुत्ते, णव णयसब्भाव-जाणवो वंदे।
दहविहधम्मट्ठाई, दससंजमसंजदे वंदे॥7॥
एयारसंगसुद-सायरपारगे बारसंग-सुदणिउणे।
बारसविह-तवणिरदे, तेरसकिरियादरे वंदे॥8॥
भूदेसु दयावण्णे, चउदस चउदससु गंथपरिसुद्धे।
चउदस-पुव्वपगब्भे, चउदसमल-वज्जिदे वंदे॥9॥
वंदे चउत्थभत्तादि जाव छम्मासखवण-पडिवण्णे।
वंदे आदावंते, सूरस्स य अहिमुहट्ठिदे सूरे॥10॥
बहुविहपडिमट्ठायी, णिसिज्जवीरास-णेक्कवासी य।
अणिट्ठीव-कंडुयवदे, चत्तदेहे य वंदामि॥11॥
ठाणी मोणवदीए, अब्भोवासी य रुक्खमूली य।
धुदकेससंसुलोमे, णिप्पडियम्मे य वंदामि॥12॥
जल्लमल्ल-लित्तगत्ते, वंदे कम्ममल-कलुसपरिसुद्धे।
दीहणह-मंसुलोमे, तवसिरिभरिये णमंसामि॥13॥
णाणोदयाहिसित्ते, सीलगुणविहूसिदे तपसुगंधे।
ववगयरायसुदड्ढे, सिवगइपहणायगे वंदे॥14॥
उग्गतवे दित्ततवे, तत्ततवे महातवे य घोरतवे।
वंदामि तवमहंते, तवसंजम-इड्ढिसंजुत्ते॥15॥
आमोसहिए खेलोसहिए जल्लोसहिए तवसिद्धे।

विप्पोसहिए सव्वोसहिए वंदामि तिविहेण ॥16॥
अमयमहुखीर-सप्पिसवीए अक्खीणमहाणसे वंदे।
मणबलि-वचबलि-कायबलिणो य वंदामि तिविहेण ॥17॥
वरकुट्ठबीयबुद्धी, पदाणुसारी य भिण्णसोदारे।
उग्गहईह-समत्थे, सुत्तत्थविसारदे वंदे ॥18॥
आभिणिबोहिय सुद ओहिणाणि मणणाणि सव्वणाणी य।
वंदे जगप्पदीवे, पच्चक्ख-परोक्खणाणी य ॥19॥
आयासतंतुजल-सेढिचारणे जंघचारणे वंदे।
विउवण-इड्ढिपहाणे,विज्जाहर-पण्णसवणे य ॥20॥
गइचउरंगुल-गमणे, तहेव फलफुल्ल-चारणे वंदे।
अणुवम-तवमहंते, देवासुर-वंदिदे वंदे ॥21॥
जियभयउवसग्गे जियइंदिय-परीसहे जियकसाए।
जियरागदोसमोहे, जियसुहदुक्खे णमंसामि ॥22॥
एवं मए अभित्थुया, अणयारा रागदोस-परिसुद्धा।
संघस्स वरसमाहिं, मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥23॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! योगिभत्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्ज-दीवदोसमुद्देसु पण्णारस-कम्मभूमिसु आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवास-ठाणमोण-वीरासणेक्क पास-कुक्कुडासण-चउत्थपक्ख-खवणादि-योगजुत्ताणं सव्व-

साहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होऊ मज्झं।

अंजलि द्वारा दोनों हाथों को मुकुलित कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार वंदना करता हुआ मैं गुणों के धारक अनगारों(योगियों-मुनियों) की परमार्थभूत गुणों के द्वारा स्तुति करता हूँ॥ 1॥

मुनि दो प्रकार के जानना चाहिए -एक, समीचीन भावों से सम्पन्न भावलिंगी और दूसरे, मिथ्या भाव से सम्पन्न द्रव्यलिंगी। इनमें मिथ्याभाव वाले द्रव्यलिंगियों को छोड़कर समीचीन भाव वाले (भावलिंगी) मुनियों की वंदना करता हूँ॥ 2॥

जो राग और द्वेष-इन दो दोषों से रहित हैं, जो मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप तीन दण्डों से विरत हैं, जो माया, मिथ्या और निदान, इन तीन शल्यों से अत्यन्त शुद्ध अर्थात् रहित हैं, जो ऋद्धिगारव, रसगारव और सातगारव, इन तीन गारवों से रहित हैं तथा तीन करण-मन, वचन, काय की प्रवृत्ति से शुद्ध हैं, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 3॥

जो चार प्रकार की कषायों का मनन करने वाले हैं, जो चतुर्गतिरूप संसार के गमन रूप भय से भीत हैं, जो मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकार के आस्रव से विरत हैं और पंच इंद्रियों को जिन्होंने जीत लिया है, ऐसे मुनियों की मैं वंदना करता हूँ॥ 4॥

जो छह काय के जीवों पर दयालु हैं, जो छह अनायतनों (कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और इनके सेवकों) से रहित हैं, जो शांत भावों को प्राप्त हैं, जो सात प्रकार (इहलोक, परलोक, अकस्मात्, वेदना, अत्राण, अगुप्ति और मरण) के भयों से मुक्त हैं तथा जो जीवों को अभय प्रदान करने वाले हैं, ऐसे मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 5 ॥

जिन्होंने ज्ञान-पूजा-कुल-जाति-बल-ऋद्धि-तप और शरीर सम्बन्धी आठ मदों को नष्ट कर दिया है, जिन्होंने ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को तथा संसार को नष्ट कर दिया है, परमार्थ (मोक्ष) प्राप्त करना ही जिनका ध्येय है और जो अणिमा, महिमा आदि आठ गुण रूपी ऋद्धियों के स्वामी हैं, उन मुनियों की मैं वंदना करता हूँ॥ 6 ॥

जो मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना के भेद से नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य से सुरक्षित हैं तथा जो नौ प्रकार (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक तथा उनके नैगम-संग्रह आदि सात भेद इस तरह नौ) के नयों के सद्भाव को जानने वाले हैं, ऐसे मुनियों की वंदना करता हूँ। इसी प्रकार जो उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के धर्मों में स्थित हैं तथा जो दश प्रकार (एकेन्द्रियादि पाँच प्रकार के जीवों की रक्षा करना तथा स्पर्शनादि पाँच इंद्रियों को वश करना इस तरह दस भेद वाले) संयम से सहित हैं, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 7 ॥

जो ग्यारह अंग रूपी श्रुतसागर के पारगामी हैं, जो बारह अंगरूप श्रुत में निपुण हैं, जो बारह प्रकार के तप में लीन हैं तथा जो तेरह प्रकार की क्रियाओं (पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियों) का आदर करने वाले उन मुनियों की वंदना करता हूँ॥ 8॥

जो एकेन्द्रियादि चौदह जीवसमास रूप जीवों पर दया को प्राप्त हैं, जो मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह से रहित होने के कारण अत्यन्त शुद्ध हैं, जो चौदह पूर्वों के पाठी हैं तथा जो चौदह मलों से रहित हैं, ऐसे मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 9॥

जो चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन के उपवास से लेकर छह मास तक के उपवास करते हैं, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ। जो दिन के आदि और अंत में सूर्य के सम्मुख स्थित होकर तपस्या करते हैं तथा कर्मों का निर्मूलन करने में जो शूर हैं, उन मुनियों की वंदना करता हूँ॥ 10॥

जो अनेक प्रकार के प्रतिमायोगों से स्थित रहते हैं, जो निषद्या, वीरासन और एक पार्श्व आदि आसन धारण करते हैं, जो नहीं थूकते तथा नहीं खुजलाने का व्रत धारण करते हैं तथा शरीर से जिन्होंने ममत्व भाव छोड़ दिया है, ऐसे मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 11॥

जो खड़े होकर ध्यान करते हैं, मौन व्रत का पालन करते

हैं, शीतकाल में आकाश के नीचे निवास करते हैं, वर्षाऋतु में वृक्ष के मूल में निवास करते हैं, जो केश तथा दाढ़ी और मूँछ के बालों का लोच करते हैं तथा जो रोगादि के प्रतिकार से रहित हैं ऐसे मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 12 ॥

जल्ल (सर्वांग मल) और मल्ल (एक अंग का मल) से जिनका शरीर लिप्त है, जो कर्मरूपी मल से उत्पन्न होने वाली कलुषता से रहित हैं, जिनके नख तथा दाढ़ी-मूँछों के बाल बढ़े हुए हैं और जो तप की लक्ष्मी से परिपूर्ण हैं, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 13 ॥

जो ज्ञान रूप जल से अभिषिक्त हैं, शीलरूपी गुणों से विभूषित हैं, तप से सुगंधित हैं, राग रहित हैं, श्रुत से सहित हैं और मोक्षगति के नायक हैं, उन मुनियों की मैं वंदना करता हूँ॥14 ॥

जो उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप और घोरतप को धारण करने वाले हैं, तप के कारण इन्द्रादि के द्वारा पूजित हैं तथा जो तप, संयम और ऋद्धियों से सहित हैं, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 15 ॥

जो आमौषधि, खेलौषधि, जल्लौषधि, विप्रुष् औषधि और सर्वौषधि के धारक हैं तथा तप से प्रसिद्ध अथवा कृतकृत्य हैं उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 16 ॥

अमृतस्रावी, मधुस्रावी, क्षीरस्रावी, सर्पिःस्रावी (घृतस्रावी)

ऋद्धियों के धारक, अक्षीणमहानस ऋद्धि के धारक तथा मनोबल, वचनबल और कायबल ऋद्धि के धारक मुनियों को मैं तीन प्रकार (मन, वचन, काय) से नमस्कार करता हूँ॥ 17॥

उत्कृष्ट कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारी और संभिन्न-श्रोतृत्व ऋद्धि के धारक, अवग्रह और ईहा ज्ञान में समर्थ तथा सूत्र के अर्थ में निपुण मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 18॥

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और सर्वज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी इस तरह जगत् को प्रकाशित करने के लिए प्रदीप स्वरूप प्रत्यक्षज्ञानी तथा परोक्षज्ञानी मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 19॥

आकाश, तंतु, जल तथा पर्वत की अटवी आदि का आलम्बन लेकर चलने वाले मुनियों को, जंघाचारण ऋद्धि के धारक, विक्रिया ऋद्धि के धारक, विद्याधर मुनियों को और प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि के धारक मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 20॥

मार्ग में चार अंगुल ऊपर गमन करने वाले, फल और फूलों पर चलने वाले, अनुपम तप से पूजनीय तथा देव और असुरों के द्वारा वंदित मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 21॥

जिन्होंने भय को जीत लिया है, उपसर्ग को जीत लिया है, इन्द्रियों को जीत लिया है, परीषहों को जीत लिया है, कषायों को जीत लिया है, राग, द्वेष और मोह को जीत लिया है तथा सुख

और दुःख को जीत लिया है, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 22॥

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुत राग-द्वेष से विशुद्ध अर्थात् रहित मुनि, संघ को उत्तम समाधि प्रदान करें और मेरे भी दुःखों का क्षय करें॥ 23॥

हे भगवन्! मैंने योगिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। अढ़ाईद्वीप, दो समुद्रों तथा पन्द्रह कर्मभूमियों में आतापनयोग, वृक्षमूलयोग, अभ्रावास (खुले आकाश के नीचे बैठना) योग, मौन, वीरासन, एकपार्श्व, कुक्कुटासन, उपवास तथा पक्षोपवास आदि योगों से युक्त समस्त साधुओं की नित्य ही अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। उसके फलस्वरूप मेरे कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की संप्राप्ति हो।

❑❑❑

आचार्यभक्ति

देसकुलजाइसुद्धा, विसुद्धमणवयण-कायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं॥1॥
सगपरसमय-विदण्हू, आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता।
सुसमत्था जिणवयणे, विणये सत्ताणुरूवेण॥2॥

बालगुरुवुड्ढसेहे, गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता।
वट्टावयगा अण्णे, दुस्सीले चावि जाणित्ता॥3॥
वदसमिदि-गुत्तिजुत्ता, मुत्तिपहे ठावया पुणो अण्णे।
अज्झावय-गुणणिलये, साहुगुणेणावि संजुत्ता॥4॥
उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा।
कम्मिंधणदह-णादो, अगणी वाऊ असंगादो॥5॥
गयणमिव णिरुवलेवा, अक्खोवा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुण-णिलयाणं, पायं पणमामि सुद्धमणो॥6॥
संसारकाणणे पुण,-बंभममाणेहि भव्वजीवेहिं।
णिव्वाणस्स हु मग्गो, लद्धो तुम्मं पसाएण॥7॥
अविसुद्ध-लेस्सरहिया, विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा।
रुद्दट्ठे पुण चत्ता, धम्मे सुक्के य संजुत्ता॥8॥
उग्गहईहावाया-धारणगुणसंपदेहिं संजुत्ता।
सुत्तत्थभावणाए, भावियमाणेहिं वंदामि॥9॥
तुम्हं गुणगणसंथुदि, अजाणमाणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम बोहिलाहं, गुरुभत्ति-जुदत्थओ णिच्चं॥10॥

अंचलिका

इच्छामि भंते! आयरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादि-सुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं,

तिरयणगुण-पालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

देश, कुल और जाति से विशुद्ध तथा विशुद्ध मन, वचन, काय से संयुक्त हे आचार्य! तुम्हारे चरणकमल मुझे इस लोक में नित्य ही मंगलरूप हों ॥ 1 ॥

वे आचार्य स्वसमय और परसमय के जानकार होते हैं, आगम और हेतुओं के द्वारा पदार्थों को जानकर जिनवचनों के कहने में अत्यन्त समर्थ होते हैं और शक्ति अथवा प्राणियों के अनुसार विनय करने में समर्थ रहते हैं ॥ 2 ॥

वे आचार्य बालक, गुरु, वृद्ध, शैक्ष्य, रोगी और स्थविर मुनियों के विषय में क्षमा से सहित होते हैं तथा अन्य दुःशील शिष्यों को जान कर सन्मार्ग में वर्ताते हैं अर्थात् लगाते हैं ॥ 3 ॥

वे आचार्य व्रत, समिति और गुप्ति से सहित होते हैं, अन्य जीवों को मुक्ति के मार्ग में लगाते हैं, उपाध्यायों के गुणों के स्थान होते हैं तथा साधु परमेष्ठी के गुणों से संयुक्त रहते हैं ॥ 4 ॥

वे आचार्य उत्तम क्षमा से पृथ्वी के समान, निर्मल भावों से स्वच्छ जल के सदृश हैं, कर्मरूपी ईंधन के जलाने से अग्नि स्वरूप हैं तथा परिग्रह से रहित होने के कारण वायु रूप हैं ॥ 5 ॥

वे मुनिश्रेष्ठ - आचार्य आकाश की तरह निर्लेप और

सागर की तरह क्षोभरहित होते हैं। ऐसे गुणों के घर आचार्य परमेष्ठी के चरणों को मैं शुद्ध मन से नमस्कार करता हूँ॥ 6॥

हे आचार्य! संसार रूपी अटवी में भ्रमण करने वाले भव्य जीवों ने आपके प्रसाद से निर्वाण का मार्ग प्राप्त किया है॥ 7॥

वे आचार्य अविशुद्ध अर्थात् कृष्ण, नील और कापोत लेश्या से रहित तथा विशुद्ध अर्थात् पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याओं से युक्त होते हैं। रौद्र तथा आर्तध्यान के त्यागी और धर्म्य तथा शुक्लध्यान से सहित होते हैं॥ 8॥

वे आचार्य आगम के अर्थ की भावना से भाव्यमान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा नामक गुणरूपी सम्पदाओं से संयुक्त होते हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ॥ 9॥

हे आचार्य! आपके गुणसमूह की स्तुति को जानते हुए मैंने जो बहुत भारी भक्ति से युक्त स्तवन कहा है वह मेरे लिए निरन्तर बोधिलाभ अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति प्रदान करे॥ 10॥

हे भगवन्! मैंने आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त हैं तथा पाँच प्रकार के आचार का पालन करते हैं ऐसे आचार्यों की, आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्यायों की और रत्नत्रय रूपी गुणों के पालन करने में लीन समस्त साधुओं की मैं निरन्तर अर्चा करता हूँ, पूजा

करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। उसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मेरे लिए जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

❑❑❑

निर्वाणभक्ति

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो।
उज्जंते णेमिजिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥1 ॥
वीसं तु जिणवरिंदा, अमरासुर-वंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥2 ॥
सत्तेव य बलभद्दा, जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
गजपंथे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥3 ॥
वरदत्तो य वरंगो, सायरदत्तो य तारवरणयरे।
आहुट्ठय-कोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥4 ॥
णेमिसामी पज्जुण्णो, संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।
बाहत्तर कोडीओ, उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥5 ॥
रामसुआ विण्णि जणा, लाडणरिंदाण पंचकोडीओ।
पावागिरिवरसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥6 ॥
पंडुसुआ तिण्णि जणा, दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
सत्तुंजयगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥7 ॥

रामहणूसुग्गीवो, गवयगवक्खो य णील महणीला।
णवणवदीकोडीओ, तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे॥8॥
अंगाणंगकुमारा, विक्खापंचद्ध-कोडिरिसिसहिया।
सुवण्णगिरि-मत्थयत्थे,णिव्वाणगया णमो तेसिं॥9॥
दसमुहराअस्स सुआ, कोडीपंचद्धमुणिवरे सहिया।
रेवाउहयतडग्गे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥10॥
रेवाणइए तीरे, पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे।
दो चक्की दह कप्पे, आहुट्ठयकोडि णिव्वुदे वंदे॥11॥
वडवाणीवरणयरे, दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे।
इंदजियकुंभकण्णो, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥12॥
पावागिरिवरसिहरे, सुवण्णभद्दाइ मुणिवरा चउरो।
चेलणाणईतडग्गे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥13॥
फलहोडीवरगामे, पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे।
गुरुदत्ताइ मुणिंदा, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥14॥
णायकुमारमुणिंदो, वालिमहावालि चेव अज्झेया।
अट्ठावयगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥15॥
अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणभाए मेढगिरिसिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥16॥
वंसत्थलम्मि णयरे, पच्छिमभायम्मि कुंथगिरिसिहरे।
कुलदेसभूसणमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥17॥

जसहररायस्स सुआ, पंचसया कलिंगदेसम्मि।
कोडिसिला कोडिमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥18॥
पासस्स समवसरणे, गुरुदत्तवरदत्त-पंचरिसिपमुहा।
रिस्सिंदीगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥19॥
जे जिणु जित्थु तत्था, जे दु गया णिव्वुदिं परमं।
ते वंदामि य णिच्चं, तियरणसुद्धो णमंसामि॥20॥
सेसाणं तु रिसीणं, णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि।
ते हं वंदे सव्वे, दुक्खक्खय-कारणट्ठाए॥21॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। इमम्मि अवसप्पिणीए पच्छिमे भाए आहुट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकम्मि, पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदिमहावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण-महाकल्लाणपुज्जं करंति अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहि-मरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अष्टापद (कैलाश पर्वत) पर ऋषभनाथ, चम्पापुर में वासुपूज्य, ऊर्जयन्तगिरि (गिरनार पर्वत) पर नेमिनाथ और पावापुर में महावीर स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए हैं ॥ 1 ॥

जो देव और असुरों के द्वारा वंदित हैं तथा जिन्होंने समस्त क्लेशों को नष्ट कर दिया है, ऐसे बीस जिनेन्द्र सम्मेदाचल के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उन सबको नमस्कार हो ॥ 2 ॥

सात बलभद्र और आठ करोड़ यादववंशी राजा गजपंथा गिरि के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार हो ॥ 3 ॥

वरदत्त, वरांग, सागरदत्त और साढ़े तीन करोड़ मुनिराज तारवर नगर में निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार हो ॥ 4 ॥

नेमिनाथ स्वामी, प्रद्युम्न, शंबुकुमार, अनिरुद्ध और बहत्तर करोड़ सात सौ मुनि ऊर्जयन्तगिरि पर सिद्ध हुए हैं ॥ 5 ॥

रामचन्द्र के दो पुत्र, लाट देश के पाँच करोड़ राजा पावागिरि के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो ॥ 6 ॥

पाण्डु के तीन पुत्र (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन) और आठ करोड़ द्रविड़ राजा शत्रुंजय गिरि के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो ॥ 7 ॥

राम, हनुमान, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील, महानील तथा निन्यानवे करोड़ मुनिराज तुंगी पर्वत से निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें वंदना करता हूँ॥ 8॥

अंग और अनंगकुमार साढ़े पाँच करोड़ प्रसिद्ध मुनियों के साथ सोनागिरि के शिखर से निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 9॥

दशमुख राजा अर्थात् रावण के पुत्र साढ़े पाँच करोड़ मुनियों के साथ रेवा नदी के दोनों तटों से मोक्ष को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 10॥

रेवा नदी के तीर पर पश्चिम भाग में स्थित सिद्धवर कूट पर दो चक्रवर्ती, दस कामदेव और साढ़े तीन करोड़ मुनिराज निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार करता हूँ॥ 11॥

वडवानी नगर के दक्षिण भाग में स्थित चूलगिरि के शिखर पर इन्द्रजीत और कुंभकर्ण निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 12॥

चेलना नदी के तट पर पावागिरि के उत्कृष्ट शिखर पर सुवर्णभद्र आदि चार मुनिराज मोक्ष को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 13॥

फलहोडी नामक उत्कृष्ट ग्राम के पश्चिम भाग में द्रोणगिरि के शिखर पर गुरुदत्त आदि मुनिराज निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 14॥

नागकुमार मुनिराज, बाली और महाबाली कैलास पर्वत के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 15॥

अचलपुर (एलिचपुर) नामक उत्कृष्ट नगर की ऐशान दिशा में मेंढ्रगिरि (मुक्तागिरि) के शिखर पर साढ़े तीन करोड़ मुनिराज मोक्ष को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 16॥

वंशस्थल नगर के पश्चिम भाग में स्थित कुंथगिरि (कुंथलगिरि) के शिखर पर कुलभूषण-देशभूषण मुनि निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 17॥

यशोधर राजा के पाँच सौ पुत्र और एक करोड़ मुनि कलिंग देश में स्थित कोटिशिला से निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 18॥

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में गुरुदत्त, वरदत्त आदि पाँच मुनिराज रेशंदीगिरि के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए, उन्हें नमस्कार हो॥ 19॥

जो जिन जहाँ जहाँ से परम निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, मैं उनकी वंदना करता हूँ तथा त्रिकरण (मन, वचन, काय) से शुद्ध होकर उन्हें नमस्कार करता हूँ॥ 20॥

शेष मुनियों का निर्वाण जिस-जिस स्थान पर हुआ है, दुःखों का क्षय करने के लिए मैं उन सबको नमस्कार करता हूँ॥ 21॥

हे भगवन्! मैंने निर्वाण भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया

है उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। इस अवसर्पिणी संबंधी चतुर्थकाल के पिछले भाग में साढ़े तीन माह कम चार वर्ष शेष रहने पर पावानगरी में कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में स्वाति नक्षत्र के रहते हुए प्रभातकाल में भगवान, महावीर अथवा वर्धमान स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए, उसके उपलक्ष्य में तीनों लोकों में जो भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी के भेद से चार प्रकार के देव रहते हैं, वे सपरिवार दिव्य गंध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य सुगंधित पदार्थ और दिव्य स्नान के द्वारा निरन्तर उनकी अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं और निर्वाण नामक महाकल्याण की पूजा करते हैं। मैं भी यहाँ रहता हुआ वहाँ स्थित उन निर्वाण क्षेत्रों की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

❑❑❑

पंचगुरुभक्ति

मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया,
पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया।
दंसणं णाण - झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥1॥
जेहिं झाणग्गि-बाणेहिं अइ-दड्ढयं,
जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥2॥
पंचहाचार - पंचग्गि- संसाहया,
वारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया।
मोक्ख-लच्छी महंती महं ते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खंगया-संगया॥3॥
घोर - संसार - भीमाडवी - काणणे,
तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पह-देसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥4॥
उग्ग-तव-चरण-करणेहिं झीणंगया,
धम्मवरझाण-सुक्केक्क-झाणंगया।
णिब्भरं तव-सिरीए समालिंगया,

साहवो ते महं मोक्ख-पह-मग्गया ॥5 ॥

एण थोत्तेण जो पंच-गुरु वंदए,

गुरुय-संसारघण-वेल्लि सो छिंदए ।

लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं,

कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥6 ॥

अरुहा सिद्धाइरिया,उवज्झाया साहु पंच-परमेट्ठी।

एयाण णमोयारा, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥ 7 ॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! पंचमहागुरुभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठमहापाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयण-माउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि-सुयणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

राजा, नागेन्द्र और सुरेन्द्र द्वारा जिनको छत्रत्रय लगाये गये हैं, पंचकल्याणकों के सुख-समूह को प्राप्त हैं, वे जिनेन्द्र हमारे लिए उत्कृष्ट मंगल स्वरूप अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत बल तथा उत्कृष्ट ध्यान को देवें॥ 1 ॥

जिन्होंने ध्यान रूपी अग्नि-बाणों द्वारा अत्यन्त दृढ़ जन्म-

जरा और मरण रूपी तीनों नगरों को जला डाला, जिन्होंने शाश्वत शिव स्थान को प्राप्त किया, वे सिद्ध भगवान् मुझे उत्तम ज्ञान प्रदान करें॥ 2॥

जो पाँच प्रकार के आचार रूपी पंचाग्नियों का साधन करते हैं, द्वादशांग रूपी समुद्र में अवगाहन करते हैं तथा जो आशाओं से रहित मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी मेरे लिए सदा महति मोक्ष-लक्ष्मी को प्रदान करें॥ 3॥

जिसमें तीक्ष्ण विकराल नाखून वाले पापरूपी सिंह व्याप्त हैं, ऐसे घोर संसाररूपी भयंकर अटवी, वन में मार्ग भ्रष्ट जीवों को जो मार्ग के उपदेशक, मार्गदर्शक हैं, उन उपाध्याय को हम सदा वंदन करते हैं॥ 4॥

उग्र तपश्चरण करने से जिनका शरीर क्षीणता को प्राप्त हो गया है; उत्तम धर्मध्यान तथा प्रधान शुक्लध्यान को प्राप्त तथा तप रूपी लक्ष्मी से भारी आलिंगित हैं, वे साधुगण मेरे लिए मोक्ष पथ के मार्गदर्शक हों॥ 5॥

इस स्तोत्र से जो पंचगुरुओं की वंदना करता है वह गुरु (भारी, अनन्त)संसार रूपी सघन वेल को काट डालता और वह उत्तम जनों के द्वारा मान्य मोक्ष के सुखों को प्राप्त होता है और भी कर्म रूपी ईंधन समूह को प्रज्ज्वलित करता है अर्थात् जला डालता है॥ 6॥

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु यह पाँच

परमेष्ठी हैं, इनका नमस्कार मुझे भव-भव में सुख देवें ॥ 7 ॥

हे भगवन्! मैंने पंचमहागुरुभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करता हूँ। आठ महाप्रातिहार्यों से सहित अरहंत, आठ गुणों से सम्पन्न तथा ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर स्थित सिद्ध, आठ प्रवचनमातृका से संयुक्त आचार्य, आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश करने वाले उपाध्याय और रत्नत्रय रूपी गुणों के पालन करने में तत्पर सर्व साधुओं की मैं नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ और नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

❑❑❑

मुनि श्री द्वारा रचित, अनुवादित एवं सम्पादित कुछ विशिष्ट कृतियों की दिग्दर्शिका

1. **सागर बूँद समाय** – आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के विशिष्ट विचार-सूत्रों की एक संग्रहणीय कृति है। भक्ति, स्वाध्याय, साधना, धर्म, संस्कृति एवं सत् शिव सुन्दर रूप पाँच खण्डों में विभाजित 1245 बोध-वाक्यों की इस कृति का विमोचन भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने नवम्बर माह, सन् 1995 में भोपाल (म.प्र.) में किया था।
2. **महायोगी महावीर** – भगवान् महावीरस्वामी के जीवन दर्शन से सम्बन्धित संक्षिप्त सारगर्भित कृति है। भगवान् महावीर स्वामी के 2600 वें जन्म महोत्सव वर्ष पर इस कृति का आलेखन एवं प्रकाशन हुआ। महावीर से सम्बन्धित जानकारी के लिए इसे महावीर डिक्शनरी भी कहा जा सकता है।
3. **पर्युषण के दश दिन** – दशधर्मों की सरल सुबोध और सारगर्भित व्याख्या की एक प्रतिनिधि कृति है। पर्युषण के दिनों में त्यागी व्रती और विद्वानों के साथ-साथ सामान्य जन के भी काम आने वाली अनुपम कृति मुनिश्री के द्वारा सृजित है।
4. **अनुप्रेक्षा प्रवचन** – बारह भावनाओं पर दिए गये बारह प्रवचनों की एक मौलिक विशिष्ट कृति।
5. **हरियाली हिरदय बसी** – चातुर्मास काल में आने वाले पर्व, त्यौहारों या विभिन्न अवसरों पर प्रदत्त प्रवचनों का अनूठा संग्रह।
6. **जैन तत्त्वबोध** – जैनधर्म के आचार-विचार तथा ऐतिहासिक परम्पराओं के प्रामाणिक उल्लेखों से समन्वित यह कृति संक्षिप्त, सरल और सारगर्भित है। यह कृति निश्चित ही जैनधर्म के के.जी. से पी.जी. के कोर्स की पूर्ति करती है।

7. **दिगम्बर जैन मुनि** – मुनिचर्या को दर्शाने वाली एक सरल सुबोध कृति। दिगम्बर मुनि की दिनचर्या से जुड़े हुए विविध आयामी बिन्दुओं का व्यवहारिक और वैज्ञानिक विश्लेषण इस कृति में अपने आप में अनूठा है।

8. **कथा तीर्थंकरों की** – चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों के तीन भवों से सम्बन्धित जीवन (कथानक) को रेखांकित करने वाली एक विशिष्ट कृति।

9. **शलाका पुरुष** – जैन परम्परा में वर्णित 63 शलाका पुरुषों के जीवन चरित्र को निरूपित करने वाली कृति।

10. **बारस अणुवेक्खा** – आचार्य प्रवर कुन्दकुन्द स्वामी विरचित इस ग्रन्थ का दोहानुवाद, अन्वयार्थ, भावार्थ सहित विशिष्ट प्रकाशन।

11. **भक्तामर प्रश्नोत्तरी** – आचार्य प्रवर मानतुंग विरचित संस्कृत स्तोत्र (भक्ति काव्य) का दोहानुवाद सहित प्रश्नोत्तरी ग्रन्थ। इसमें 48 काव्यों पर आधारित प्रश्नोत्तरी में प्रासंगिक विषय की विवेचना की गई है।

12. **स्तुति निकुंज** – अर्थ सहित विभिन्न स्तोत्र, पाठ आदि के रूप में संयोजित एक अत्यन्त उपयोगी कृति।

13. **बेजुवानों की बात** – दया, करुणा, शाकाहार जैसे मानवीय धर्मों की प्रस्तुति कारक एक विशिष्ट संग्रहणीय कृति, जिसमें कत्लखानों और हिंसा के दुष्परिणामों को दर्शाया गया है।

14. **पंचकल्याणक** – तीर्थंकर भगवन्तों के गर्भ, जन्म आदि अवसरों पर होने वाले प्रभावोत्पादक अतिशयकारी कल्याणक-कार्यों का कथन करने वाली सारगर्भित एक लघु पुस्तिका।

❑❑❑

आचार्य श्री विद्यासागरजी : एक परिचय

श्रमण संस्कृति के उन्नायक युगदृष्टा आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज बीसवीं सदी के प्रभावशाली आचार्य हैं। वि. सं. 2003 (10 अक्टूबर, 1946) की शरदपूर्णिमा को आपका जन्म सदलगा (बेलगाँव, कर्नाटक) में हुआ। 22 वर्ष की उम्र में आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा प्राप्त कर, मात्र 4 वर्ष की अल्पावधि में (22 नवम्बर, 1972)आप, अपने गुरुवर द्वारा प्रदत्त आचार्य पद से अलंकृत हुए।

हित-मित-प्रिय उपदेशों से समाज में आचरण-बोध जगाते हुए आप ग्राम, नगर और तीर्थक्षेत्रों पर विहार कर रहे हैं। आपकेइस प्रवास से जर्जरित उपेक्षित तीर्थों का उद्धार तो हुआ ही, संघ की अभिवृद्धि भी हुई। जिसमें वर्तमान में त्रिशताधिक बाल ब्रह्मचारी साधु, साध्वियाँ और सहस्र ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियाँ वरदानी-छाया में साधनारत हैं। नैतिक और आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा बनाने वाला हिन्दी/संस्कृत, काव्य/साहित्य का सृजन कर, आपने माँ भारती के भंडार को समृद्ध किया है। चिन्तन-साधना से प्रसूत 'मूकमाटी' महाकाव्य-सा अमृत-फल पाकर साहित्य जगत् स्वयं धन्य है।

कलम और कदम का फासला जिन्होंने लगभग खत्म कर दिया है। जिह्वा और जीवन में जिनके ऐक्य स्थापित हो चुका है। ऐसी विश्व की विरल विभूति विरागमूर्ति आगमधर आचार्य श्री में अनुकम्पा और अनुशासन की जीवंतता है। सर्वोदयी भावना से अनुप्राणित आचार्यश्री जिनशासन की अहिंसा को सेवा और करुणा से जोड़कर लोकचेतनावाही बन रहे हैं। मानवता के मसीहा आचार्यश्री सचमुच ही इस युग के अद्वितीय धर्म प्रभावक हैं।

कृतियाँ

- 7 संस्कृत शतक, 5 हिन्दी काव्य, 5 कविता संग्रह, 4 दोहा शतक।
- अनेक जैन ग्रन्थों का पद्यानुवाद।
- इंग्लिश, बंगला, कन्नड, मराठी, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में स्फुट रचना।
- सर्वोदय, सिद्धोदय, मढ़ियाजी, बीना बारह, रामटेक एवं सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर, आदि अनेक दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्रों का जीर्णोद्धार एवं प्राचीन वास्तुशिल्प से नवनिर्माण।
- मानव सेवा का चिकित्सा संस्थान 'भाग्योदय' सागर (म.प्र.)
- प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान (मढ़ियाजी, जबलपुर) को शुभाशीष एवं मार्गदर्शन।
- आचार्यश्री के साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध एवं 'मूकमाटी' महाकाव्य पर देश/विदेश से लगभग 1000 समीक्षाएँ प्राप्त। विशिष्ट समीक्षाओं की संग्रह कृति 'मूकमाटी-मीमांसा' तीन खण्डों में, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित।
- ब्राह्मी विद्या आश्रम सागर एवं मढ़ियाजी(जबलपुर) में साधनारत ब्रह्मचारिणी बहिनों को मार्गदर्शन एवं शुभाशीष प्राप्त।
- तिलवाराघाट (जबलपुर) स्थित दयोदय परिसर में ज्ञान-संस्कारों की स्थली 'प्रतिभास्थली' की स्थापना। स्नातकोत्तर उपाधि (बी. एड.) सम्पन्न ब्र. बहिनों द्वारा अध्यापन कार्य का शुभारम्भ।
- मध्यप्रदेश एवं अन्य प्रान्तों में 350 जैन पाठशालाओं में लगभग 25 हजार बालक बालिकाओं को धार्मिक ज्ञान-संस्कार पाने हेतु आशीर्वाद प्राप्त।
- जीवदया के अभ्यारण्य 'दयोदय' नाम से लगभग 90 गौशालाओं में 50-60 हजार जानवर शरण प्राप्त।
- शताधिक सल्लेखनारत त्यागी व्रती, महाव्रतियों की समाधि सम्पन्नता।
- बाल ब्रह्मचारी शिक्षित शिष्य समुदाय में 113 मुनि, 170 आर्यिका, 20 ऐलक-क्षुल्लकजी, ब्रह्म. भाई-बहिनें लगभग 1000 से अधिक।

मुनि श्री समतासागरजी : एक परिचय

13 जुलाई, 1962 (वि. सं. 2019) को नन्हीं देवरी (सागर, म. प्र.) में जन्मे मुनि श्री समतासागरजी नगर सागर (ग्रीष्मावकाश 1980) में आचार्य श्री का सान्निध्य पाकर प्रभावित हुए। सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि में संघ में सम्मिलित हो, ढाई वर्ष तक गुरुवर की आशीष-छाया में स्वाध्याय साधना करते रहे। शाश्वत् सिद्धक्षेत्र तीर्थराज सम्मेदशिखर (झारखण्ड) में 10 फरवरी, 1983 को ऐलक दीक्षा एवं इसी वर्ष निकटस्थ 'ईशरी' नगर में चातुर्मास के मध्य 25 सितम्बर (कुँवार वदी तीज) को जैनेश्वरी मुनि दीक्षा प्राप्त की। गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के प्रभावक शिष्य मुनि श्री समतासागरजी कुशल वक्ता, एक अच्छे विचारक, लेखक और प्रभावी प्रवचनकार हैं। विभिन्न स्थलों पर चातुर्मास करके युवा पीढ़ी को संस्कारित कर आपने अभी तक जो धर्म प्रभावना की है, वह अद्भुत है।

पूर्व नाम : प्रवीणकुमार

माता-पिता : सौ. चन्द्ररानी(चिरौंजाबाई)-श्री राजाराम जैन

चाचा : शीतलचंद, उत्तमचंद, महेन्द्रकुमार, अजितकुमार जैन

शिक्षा : हायर सेकेण्डरी

संघ प्रवेश : सन् 1980 पर्युषण पर्व, सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि (म.प्र.)

बड़े भाई : इंजी. सुरेन्द्रकुमार, सौ. सुनीता जैन, बिलासपुर (छ.ग.)

बड़ी बहिन : सौ. माया - श्री सुरेश जैन, दमोह (म.प्र.)

छोटी बहिनें: ममताजी, आर्यिका संयममतिजी।
सुनीताजी, आर्यिका स्वभावमतिजी (संघस्थ- आर्यिका दृढ़मतिजी) एवं ब्र.बबीताजी (संयम मार्ग में साधनारत)

कृतियाँ

संयोजन : सागर बूँद समाय (विमोचन : राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा 1995 भोपाल), सर्वोदय सार, तेरा सो एक, श्रावकाचार कथा कुंज, स्तुति निकुंज, बेजुबानों की बात, सुप्रभाती, समाधितन्त्र, पर्युषण आराधना, स्वयंभूसार, आचार्य शान्तिसागर-सन्देश और समाधि, परमेष्ठी पूजन, निर्वाणभूमियाँ।

आलेखन : विलक्षण हैं दशलक्षण, सार संचय, समझें इसे हम वर्ष भर, शलाका पुरुष, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, कथा तीर्थंकरों की, महायोगी महावीर (विमोचन-मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह, सन् 2001, टीकमगढ़), द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी, तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव, जैनधर्म : शास्ता और सिद्धान्त, चातुर्मास स्थापना विधि, वात्सल्य पूर्णिमा, मूकमाटी-मुक्ति की मंगल यात्रा।

प्रवचन : प्रवचन पथ, हरियाली हिरदय बसी, चातुर्मास के चार चरण, पर्युषण के दश दिन (विमोचन : राज्यपाल श्री महावीर भाई, सन् 1999, भोजपुर, भोपाल), अनुप्रेक्षा प्रवचन। अनेक जैनग्रंथों का दोहानुवाद। गीत, गजल, मुक्तक, कविता आदि विधाओं में अनेक काव्य संग्रह। मुनिश्री के साहित्य पर अब तक दो पी-एच.डी. हुई।

चातुर्मास : ईशरी (झारखण्ड), मढ़ियाजी (जबलपुर), अहारजी, पपौराजी, थूबौनजी, मढ़ियाजी, गुरु आज्ञा से पृथक् चातुर्मास - पिडरई, शहपुरा, सतना, विदिशा, रामटेक (आचार्यश्री के साथ), कटनी, भोपाल, गोटेगाँव, सागर, ललितपुर, उदयगिरि (विदिशा), टीकमगढ़, फिरोजाबाद, बहोरीबंद क्षेत्र, सिवनी, छिंदवाड़ा, नागपुर, कारंजा, वाशिम, सदलगा(कर्नाटक), इचलकरंजी, अकोला, जालना, पारोला (जलगाँव)।

गुरुवर साहित्य प्रकाशन

(स्थायी स्तंभ)

1. चौधरी रमेशचंद्र जैन, अशोकनगर (म.प्र.)
2. निर्मलचन्द सराफ, सतना
3. राजेन्द्र जैन (गृहशोभा), सतना
4. सिंघई अजितकुमार जैन, कटनी
5. स. सिंघई सुधीरकुमार जैन, कटनी
6. सोमचन्द जैन (लकी बुक डिपो), ललितपुर
7. प्रो. आर. के. जैन, विदिशा
8. छिकोड़ी लाल जैन, गोटेगाँव (म.प्र.)
9. रूपेन्द्र मोदी, नागपुर
10. संजय जैन, संजय क्रॉकरी, विदिशा
11. पवन जैन (कान्हीवाडा), नागपुर
12. श्रीमति शकुन्तला जैन (जैन मेडम), सिवनी
13. श्री अजित आदिनाथ केटकाळे, इचलकरंजी (महा.)
14. श्री प्रथमेश धामणे, इचलकरंजी (महा.)
15. सौ. किरण ऋषभ सिंघई (जैन सन्स) पुसद
16. कल्याण जैन (नेशनल टाईपिंग) विदिशा
17. नेमीचन्द जैन (महावीर ट्रेडर्स) शमशाबाद

18. अभय जैन (कॉन्ट्रॅक्टर), भोपाल
19. समता ग्रुप (शान्तिनाथ चैत्यालय), अकोला
20. श्रीमती बसंतीबाई गोपालराव काळे, अमरावती
21. इंजी. सुदर्शन राळेकर, कारंजा (लाड)
22. रमेशचन्द्र विनीतकुमार (ताले वाले) सागर
23. सौ.उज्ज्वला सुभाष उखळकर, वाशिम
24. स. सिंघई सुधीर जैन (छोटेदादू), कटनी
25. इंजी. विवेक जैन, दिल्ली
26. विनोद जैन (जानकार ग्लास), फिरोजाबाद
27. प्रमोद जैन, बड़ौत
28. विजय जैन, शहपुरा।

अन्य प्राप्ति स्थान

वर्धमान (गोल्डी) कटनी मो. 094251-52940, विनोद जैन पत्रकार, खुरई मो. 094254-52751, राजीव जैन (लकी बुक डिपो) ललितपुर मो. 098380-20202, सोनू सिंघई नागपुर मो. 094234-01297, वीरेन्द्र सिंगलकर, नागपुर मो. 09422807850, ब्र. तात्याजी, वीराचार्य भवन, सांगली मो.094226-16167, सुदेश गुळकरी, कारंजा मो. 098505-51302, पारस तोरावत, अकोला मो. 091751-75096 धनराज जैन, जालना, मो. 9423748733।